ओ भैरवी !

प्रस्तुत पुस्तक यशपाल जी की नवीनतम १९५५ के पश्चात् की कहानियों का संग्रह है।

इस संकलन को लेखक की शैली और कला के आधुनिकतम और चरम विकास का प्रतिनिधि कहा जाना चाहिये।

लेखक की मान्यता है कि सौन्दर्य रुचि का उपादान और परिणिति है। यह कहानियाँ हमारे समय और परिस्थितियों से उत्पन्न नवीन रुचियों का विश्लेपण और तदनुकूल सौन्दर्यो का विवेचन हैं। उस प्रयोजन से कहानियों में 'ओ भैरवी' के समान अति प्राचीन और 'देखा सुना आदमी' केसमान अति आधुनिक पात्र और घटना क्रम भी मिलेंग।

यह कहानियाँ भारत के सर्वाधिक जन प्रिय कथाकार यशपाल की नवीनतम सफलताओं का परिचय है।

प्रकाशक

पुस्तकमाला — ३४

ओ भैरवी !

(कहानी संग्रह)

यशपाल

प्रकाशक

विप्लव कार्यालय, लखनऊ

विषय सूची

इन कहानियों के विषय में:—

कहानी सदा मनुष्य की होती है।

कहानी देवताओं और पशुओं को नायक अथवा पात्र बनाकर भी गढ़ी जाती है। ऐसी कहानी में देवता अथवा पशु मनुष्य के गुण-स्वभाव का प्रतिनिधित्व करते हैं और अपने समय के मानव-समाज के लक्ष्यों, आदर्शों और सद्-व्यवहारों को चरितार्थ करने का यत्न करते दिखाई देते हैं। कुमारसंभव, मेघदूत, पंचतंत्र, ईसप की कहानियां और दादी-नानी द्वारा बच्चों को सुनाई जाने वाली सभी कहानियां यही प्रमाणित करती हैं। यदि कभी किसी भूभाग, पर्वत, वृक्ष अथवा जीव विशेष की कहानी लिखी जाती है तो भी कहानी का आधार मनुष्य का प्रसंग ही होता है।

कहानी द्वारा मनुष्य, मानव-समाज के रूप में अपनी समस्याओं में रुचि लेकर उनका चिंतन करता है। कथाकार का प्रयत्न इस प्रकार के चिंतन और विचार की प्रक्रिया को रुचिकर बना सकने का यत्न होता है।

रुचि उत्पन्न कर सकना और रुचि को संतुष्ट कर सकना सौन्दर्य के प्रभाव और गुण हैं। रुचि और सौन्दर्य अन्योन्याश्रय हैं परन्तु रुचि हेतु जान पड़ती है और सौन्दर्य उसका उपादान और फल जान पड़ता है।

जीवित रह सकने की इच्छा और गुण के कारण ही मनुष्य में दीर्घ जीवन की कामना होती है। जीवन को दीर्घ से दीर्घतर बनाने की इच्छा ही अमरत्व की कामना है। जीवन की दीर्घता और अमरत्व में मनुष्य को बहुत बड़ा सौन्दर्य अनुभव होता है। संसार और जीवन से विरक्ति द्वारा अमरत्व की कामना मृत्यु से भय और जीवन की इच्छा का नकारात्मक रूप ही है। यह लक्ष से विमुख दिशा में लक्ष को खोजना है।

अपने जीवन को दीर्घ और अमर बनाने की इच्छा ही मनुष्य के मस्तिष्क में शाश्वत और निरंतर की कल्पना उत्पन्न करती है। मनुष्य अपने जीवन के लिये और जीवन से सम्पर्क रखने वाली वस्तुओं के लिये ही नहीं अपितु अपने

विचारों, भावनाओं और परिस्थितियों के लिये भी अमर और शाश्वत होने की कामना और कल्पना करने लगता है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति ही शाश्वत सौन्दर्य के विचार को भी उत्पन्न कर देती है।

परन्तु मानव प्राणी अमर नहीं है न मनुष्य के विचारों और प्रयत्नों द्वारा उत्पन्न विचार और वस्तुऐं ही शाश्वत और स्थिर हैं। कल्पना कीजिये, यदि मानव जाति की अतीत की पीढ़ियां अमर होतीं और मानव-समाज की जीवन नौका के दिशा-दर्शन के लिये डांड उन्हीं पीढ़ियों के हाथ में रहता तो मानव समाज आज भी किस अवस्था में होता? मानव-समाज का विकास इसीलिये संभव हो सका है कि मानव व्यक्ति अमर नहीं है और उस के जीवन की परिस्थितियां भी अमर और शाश्वत नहीं, परिवर्तनशील रही हैं। मनुष्य व्यक्ति और उस के समाज की रुचि और सौन्दर्य की भावना भी शाश्वत, स्थिर और अपरिवर्तनशील नहीं है। परिस्थितियों के परिवर्तन के अनुकूल नयी मान्यताओं, रुचियों और सौन्दर्यों का उत्पन्न होना आवश्यक होता है और आज भी है।

यह कहानियां प्रस्तुत करते समय इतनी गोल-मोल व्याख्या इसलिये आवश्यक हो रही है कि इन कहानियों में जिस रुचि का परिपाक मिलेगा वह अतीत की रुचि से भिन्न है। इन कहानियों के प्रेरणा-स्रोत नयी परिस्थितियों के हैं। उसी के अनुकूल इनके संवेदन हैं। यदि आज भी सौन्दर्य की सृष्टि की जा सकती है तो वह सौन्दर्य आधुनिक परिस्थितियों से उत्पन्न विचारों और रुचि के अनुकूल ही होगा।

मेरे लिये यह विश्वास कर पाना कठिन है कि आज का समाज अतीत की सभी मान्यताओं में भावात्मक और रागात्मक सौन्दर्य की अनुभूति कर सकता है। मैं आज पति के वियोग में पत्नी के चितारोहण में सौन्दर्य नही विभीषिका ही अनुभव करता हूँ। मैं उस आदर्श को सुन्दर बनाने का यत्न नहीं कर सकता। मैं अतीत में भी किसी पति को पत्नी के वियोग में चिता पर चढ़ने के लिये व्याकुल होने के उदाहरण नहीं देख पाता तो स्त्री-पुरुषों की समता के विचार के इस युग में मुझे पति के सती होने के आदर्श के प्रति रागात्मक सहानुभूति उत्पन्न करना भीषण अन्याय ही जान पड़ता है। मै राजा हरिश्चन्द्र द्वारा ऋण- शोध के लिये पत्नी को बाजार में बेच डालने की कर्तव्य-परायणता के लिये भी आदर की अनुभूति उत्पन्न नहीं कर सकता, उसे धर्म नहीं समझ सकता। आज की परिस्थितियों में स्वामी-भक्ति के लिये आदर

उत्पन्न करना मुझे मानव की ममता का अपमान और अन्याय को प्रतिष्ठा देने का यत्न ही जान पड़ता है।

मैं आज दिग्विजय के काव्य में वीर रस नहीं बल्कि लूट के उन्माद और संहार की विभीषिका देख पाता हूँ। प्रेम के आदर्श और उसे चरितार्थ करने में भी मुझे आज अतीत से बहुत अंतर दिखायी देता है। आज यदि कोई शकुन्तला किसी दुश्यंत द्वारा भुला दी जाने और अपमानित की जाने पर भी फिर उसी पति के चरणों का आश्रय चाहती है तो वह नारी मुझे मानवी आत्म-सम्मान से शून्य अत्यन्त हेय नारी ही जान पड़ेगी।

इसलिये इन कहानियों में रुचि और सौन्दर्य की भूमि और अभिव्यक्तियाँ अतीत से भिन्न हैं। यह मेरे लिये अनिवार्य है क्योंकि मैं वर्तमान का मनुष्य हूँ। मैं कल्पना में यदि उड़ना चाहूं तो भविष्य की ओर उड़ने की कामना कर सकता हूँ, अतीत की ओर नहीं। मनुष्य और उसका समाज इतिहास में भी कभी अतीत की ओर नहीं गया। जो लोग वर्तमान के यथार्थ की अवहेलना करने के लिये अतीत के अफीम की पिनक में संतुष्ट रहना चाहते हैं, वे वर्तमान समाज के प्रति ईमानदार नहीं हो सकते।

६-९-५८
१०-वेस्ट, ओ० एफ० ई०
देहरादून

यशपाल

विचारों, भावनाओं और परिस्थितियों के लिये भी अमर और शाश्वत होने की कामना और कल्पना करने लगता है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति ही शाश्वत सौन्दर्य के विचार को भी उत्पन्न कर देती है।

परन्तु मानव प्राणी अमर नहीं है न मनुष्य के विचारों और प्रयत्नों द्वारा उत्पन्न विचार और वस्तुऐं ही शाश्वत और स्थिर हैं। कल्पना कीजिये, यदि मानव जाति की अतीत की पीढ़ियां अमर होतीं और मानव-समाज की जीवन नौका के दिशा-दर्शन के लिये डांड उन्हीं पीढ़ियों के हाथ में रहता तो मानव समाज आज भी किस अवस्था में होता ? मानव-समाज का विकास इसीलिये संभव हो सका है कि मानव व्यक्ति अमर नहीं है और उस के जीवन की परिस्थितियां भी अमर और शाश्वत नहीं, परिवर्तनशील रही हैं। मनुष्य व्यक्ति और उस के समाज की रुचि और सौन्दर्य की भावना भी शाश्वत, स्थिर और अपरिवर्तनशील नहीं है। परिस्थितियों के परिवर्तन के अनुकूल नयी मान्यताओं, रुचियों और सौन्दर्यों का उत्पन्न होना आवश्यक होता है और आज भी है।

यह कहानियां प्रस्तुत करते समय इतनी गोल-मोल व्याख्या इसलिये आवश्यक हो रही है कि इन कहानियों में जिस रुचि का परिपाक मिलेगा वह अतीत की रुचि से भिन्न है। इन कहानियों के प्रेरणा-स्रोत नयी परिस्थितियों के हैं। उसी के अनुकूल इनके संवेदन हैं। यदि आज भी सौन्दर्य की सृष्टि की जा सकती है तो वह सौन्दर्य आधुनिक परिस्थितियों से उत्पन्न विचारों और रुचि के अनुकूल ही होगा।

मेरे लिये यह विश्वास कर पाना कठिन है कि आज का समाज अतीत की सभी मान्यताओं में भावात्मक और रागात्मक सौन्दर्य की अनुभूति कर सकता है। मैं आज पति के वियोग में पत्नी के चितारोहण में सौन्दर्य नहीं विभीषिका ही अनुभव करता हूँ। मैं उस आदर्श को सुन्दर बनाने का यत्न नहीं कर सकता। मैं अतीत में भी किसी पति को पत्नी के वियोग में चिता पर चढ़ने के लिये व्याकुल होने के उदाहरण नहीं देख पाता तो स्त्री-पुरुषों की समता के विचार के इस युग में मुझे पति के सती होने के आदर्श के प्रति रागात्मक सहानुभूति उत्पन्न करना भीषण अन्याय ही जान पड़ता है। मैं राजा रश्चन्द्र द्वारा ऋण-शोध के लिये पत्नी को बाजार में बेच डालने की कर्तव्य-यणता के लिये भी आदर की अनुभूति उत्पन्न नहीं कर सकता, उसे धर्म समझ सकता। आज की परिस्थितियों में स्वामी-भक्ति के लिये आदर

उत्पन्न करना मुझे मानव की समता का अपमान और अन्याय को प्रतिष्ठा देने का यत्न ही जान पड़ता है।

मैं आज दिग्विजय के काव्य में वीर रस नहीं बल्कि लूट के उन्माद और संहार की विभीषिका देख पाता हूँ। प्रेम के आदर्श और उसे चरितार्थ करने में भी मुझे आज अतीत से बहुत अंतर दिखायी देता है। आज यदि कोई शकुन्तला किसी दुश्यंत द्वारा भुला दी जाने और अपमानित की जाने पर भी फिर उसी पति के चरणों का आश्रय चाहती है तो वह नारी मुझे मानवी आत्म-सम्मान से शून्य अत्यन्त हेय नारी ही जान पड़ेगी।

इसलिये इन कहानियों में रुचि और सौन्दर्य की भूमि और अभिव्यक्तियां अतीत से भिन्न हैं। यह मेरे लिये अनिवार्य है क्योंकि मैं वर्तमान का मनुष्य हूँ। मैं कल्पना में यदि उड़ना चाहूं तो भविष्य की ओर उड़ने की कामना कर सकता हूँ, अतीत की ओर नहीं। मनुष्य और उसका समाज इतिहास में भी कभी अतीत की ओर नहीं गया। जो लोग वर्तमान के यथार्थ की अवहेलना करने के लिये अतीत के अफीम की पिनक में सतुष्ट रहना चाहते हैं, वे वर्तमान समाज के प्रति ईमानदार नहीं हो सकते।

६-९-५८
१०-वेस्ट, ओ० एफ० इ०
देहरादून

यशपाल

ओ भैरवी !

...गवान तथागत की अजस्र करुणा के प्रभाव से ...वर्ती प्रदेशों के जन-समुदाय में परिग्रह की प्रवृत्ति ...कामना बढ़ रही थी। निर्वाण की कामना से जन-गण ...ओर हो रही थी। नगर में चैत्य के समीप बने ...वास कर रहे थे। नगर से पाँच योजन दूर नालंदा ...भिक्षु आकर नागरिकों को अभिधर्म के मार्ग से दुख ...ति की प्रणाली का उपदेश देते रहते थे।

नगर के श्रीमान अतुल धन उपार्जन करके ... । वे दान द्वारा धर्म में श्रद्धा और वैराग्य वृत्ति ... ...न श्रीमानों की दान-दया के आश्रय अल्प अन्न- ...भिक्षुओं के उपदेश से मन को शांत बनाये रखने ... ...जगृह का कलाकार माहुल ऐसा विश्वास नहीं ...

नवयुवक कलाकार माहुल ने कई वर्ष ... ...गर कला गुरु विदवा से चित्रण और तक्षण ... ...कर्मशाला में काम मिलने पर माहुल हथौड़ा ... ...छील कर अथवा गूंधी हुई मिट्टी से यक्षों और ...रहता था। विदवा का आदेश मिलने पर वह ...अभय-हस्त उठाये अवलोकितेश्वर की मूर्ति भी ...

माहुल को कभी किसी श्रीमान की हवेली में भी चित्र बनाने के लिये जाना पड़ता। माहु... ...अनुभव न होता था। इस सब सौंदर्य ...पूर्ति योग्य अन्न और शरीर ढँकने के लिये

ओ भैरवी !

भगवान तथागत की अजस्र करुणा के प्रभाव से राजगृह और उसके समीपवर्ती प्रदेशों के जन-समुदाय में परिग्रह की प्रवृत्ति क्षीण हो कर निर्वाण की कामना बढ रही थी। निर्वाण की कामना से जन-गण की भी भावना वैराग्य की ओर हो रही थी। नगर में चैत्य के समीप बने विहार में अनेक भिक्षु निवास कर रहे थे। नगर से पाँच योजन दूर नालंदा महाविहार से भी अनेक भिक्षु आकर नागरिकों को अभिधर्म के मार्ग से दुख के कारणों और दुख से त्राण की प्रणाली का उपदेश देते रहते थे।

नगर के श्रीमान अतुल धन उपार्जन करके भी उसमें आसक्त न होते थे। वे दान द्वारा धर्म में श्रद्धा और वैराग्य वृत्ति का परिचय देते थे। इतर जन श्रीमानों की दान-दया के आश्रय अल्प अन्न-वस्त्र से भी संतुष्ट होकर, भिक्षुओं के उपदेश से मन को शांत बनाये रखने का विश्वास कर रहे थे परंतु राजगृह का कलाकार माहुल ऐसा विश्वास नहीं कर पाता था।

नवयुवक कलाकार माहुल ने कई वर्ष कठिन परिश्रम करके नगर के प्रमुख कला गुरु विश्वा से चित्रण और तक्षण कला सीखी थी। विश्वा की कर्मशाला में काम मिलने पर माहुल हथौड़ा और छैनी से पत्थर को छील-छील कर अथवा गुंधी हुई मिट्टी से यक्षों और यक्षिणियों की मूर्तियाँ बनाता रहता था। विश्वा का आदेश मिलने पर वह पद्मासन की मुद्रा में अथवा कृपा-हस्त उठाये अवलोकितेश्वर की मूर्ति भी बनाता था।

माहुल को कभी किसी श्रीमान की हवेली में अथवा विहार के बड़े कक्षों में भी चित्र बनाने के लिये जाना पड़ता। माहुल को अपने इन कामों से कोई सन्तोष अनुभव न होता था। इस सब सौंदर्य रचना का प्रयोजन उस के लिये उदर-पूर्ति योग्य अन्न और शरीर ढँकने के लिये वस्त्र पाना ही था।

विश्वा माहुल से प्रसन्न नहीं था इसलिए वह माहुल को नियमित रूप से शिल्प कार्य न देता था। केवल अधिक आवश्यकता के समय ही उसे बुलावा भेजता। माहुल के हाथ में सूक्ष्मता और लाघव तो था परन्तु उस के स्वभाव में उच्छृङ्खलता थी। वह गुरु द्वारा बताई परिपाटी और परम्परा के अनुसार न चलकर अपने मन की करना चाहता था।

माहुल के जीवन में किसी भी प्रकार का सन्तोष न था, न यथेष्ट धन पाने का और न मन की उमंग के अनुसार सौंदर्य की रचना कर पाने का। काठ की पट्टी पर गुरु द्वारा गेरु से बना दी गई यक्षिणी की आकृति में, खिले कमल के समान गोल मुख पर मत्स्य जैसे नेत्र, शंख के समान ग्रीवा, छोटे घटों के समान स्तन और बड़े घटों के समान नितम्ब बना देने में उसे कुण्ठा अनुभव होती थी।

यक्षिणियों के दर्शन का अवसर माहुल को कभी प्राप्त न हुआ था। अपने नगर में दिखाई देने वाली नारियों में वह अपने पूर्वज कलाकारों द्वारा उत्कीर्ण नारी की आकृति और रूप कहीं न देख पाता था। माहुल के मन में लौकिक नारी की आकृति बनाने की उत्कट इच्छा थी परन्तु ऐसा करने के लिये गुरु का निषेध था।

गुरु विश्वा का उपदेश था कि कला देवता की अर्चना और धर्म-प्राप्ति का साधन है। लौकिक नारी वासना का मूल है इसलिये त्याज्य है। माहुल मन ही मन खिन्न रहता कि लोग तथ्य का निरादर कर अयथार्थ की कल्पना को सौंदर्य कहते हैं और उस से प्रासादों और तोरणों को शोभित समझते हैं।

माहुल अपने मन की इच्छा किसी के सम्मुख प्रकट भी न कर पाता था इसलिये अधिक दुखी रहने लगा था। इस दुख से मुक्ति पाने के लिये उस ने भिक्षुओं के उपदेश को ही सत्य मान लेना चाहा। वह सोचने लगा—सौंदर्य की रचना कर पाने की मेरी इच्छा वासना है इसीलिये वह दुख का मूल है। इस दुख से मुक्ति का उपाय, इस इच्छा को त्याग देना ही है। वह इच्छा के बन्धन से मुक्त, अनासक्ति के परमानन्द से स्मित-वदन, पद्मासन-बद्ध तथागत की ही मूर्तियाँ बनाने लगा।

माहुल अपनी बनाई बोधि-सत्व की चार सुन्दर मूर्तियाँ भेंट के लिये ले कर संघ की शरण मांगने के लिये नालंदा महाविहार गया।

महाविहार के नियामक महास्थविर 'संप्रत' कला-दृष्टि रखते थे। उन्हों ने माहुल के सिर पर करुणा का हाथ रखकर उसे महाविहार में शरण दे दी।

माहुल ने सिर और मुख के केशों को कटा कर, पीला वस्त्र पहन कर वैराग्य का रूप धारण कर लिया। वह भिक्षुओं के साथ समाज में बैठ कर स्थविरों के मुख से इच्छा-निरोध और कर्म में अनासक्ति का उपदेश सुनता परन्तु मन उस का भटकता ही रहता। माहुल अपने मन की शांति के लिये विहार की अविकल्प मौन सेवा में लगा रहता। वह स्थान-स्थान पर रखने के लिये बुद्ध की मूर्तियाँ बनाता रहता।

माहुल ने भिक्षु-समाज में न तो 'विनय' और 'शील' के अध्ययन के लिये आदर पाया न समाधि के अभ्यास के लिये। कर्म में अनासक्ति का आदर करने वाला भिक्षु-समाज उसे कर्मकार के रूप में अनादर की दृष्टि से देखता था। भिक्षु-समाज में कर्म से अधिक से अधिक दूर रहने और कर्म में आसक्ति को अधिक से अधिक त्याज्य बना सकने का ही आदर था। माहुल उपदेश के समय समाज में सब से पीछे सिर झुकाये बैठा रहता था।

माहुल को विहार में रहते एक वर्ष बीत गया था कि उस का मन उचाट रहने लगा। अमिताभ तथागत के आत्मतुष्ट प्रसन्न वदन की आकृति उत्कीर्ण करने से उस का मन उपराम हो गया था। वह मन ही मन कहता–प्रसन्नता का कोई कारण न होने पर वह क्या प्रसन्नता दिखायें? यह तो प्रवचना है। उस का मन सौंदर्य की कल्पना में डूब जाने लगा। उस के मन में सौंदर्य और लालित्य की प्रतीक नारी थी। भिक्षु के लिये उपदिष्ट विनय और शील के नियमों के अनुसार नारी अधर्म और पाप का मूल थी।

माहुल अपने मन में छिपी कामना की यातना और पाप के बोझ के कारण दुखी रहने लगा। भिक्षु के नियमों का पालन करने के हेतु, नारी के दर्शन से बचे रहने के लिये वह भिक्षाटन के लिए विहार के बाहर ग्राम अथवा नगर में भी न जाता परन्तु नारी की कल्पना न करना उस के लिये सम्भव न था। अपनी इस प्रवृत्ति का दमन न कर सकने के कारण माहुल चौर कर्म में लिप्त हो गया।

नालंदा महाविहार के दक्षिण-पश्चिम भाग में कुछ और कक्ष निर्माण करने के लिये बहुत गहरी नींवें खुदी हुई थीं। दोपहर में भिक्षुओं के विश्राम अथवा एकत्र ध्यान करते समय माहुल अवसर देखकर इन गहरी नींवों में जा बैठता और चिकनी गीली मिट्टी लेकर नारी शरीर की खण्ड मूर्तियाँ अथवा भिन्न-भिन्न अवयवों की आकृतियाँ बना छिपाकर, रख देता। उस के मन का विकार

और बढ़ा। वह अवसर मिलने पर ग्राम और नगर में जाकर आँख चुराकर नारी शरीर को देखने का यत्न करता। दुर्भाग्य से उसे कभी, कोई ही ऐसी आकृति दिखाई देती जो उस की कलात्मक क्षुधा को तृप्ति दे सकती। तब वह मिट्टी से उस का प्रतिरूप बना सकने के लिये उत्सुक हो जाता।

× × ×

नालन्दा महाविहार की प्राचीर के भीतर दक्षिण-पश्चिम भाग में एक और परकोटा बना था। इस परकोटे में आप्त-भिक्षु अलौकिक सिद्धियों की प्राप्ति के लिये साधना करते थे। इस परकोटे में संघ के विनय और शील के साधारण नियम लागू नहीं थे। विहार के साधारण भिक्षुओं के लिये जो कर्म अपराध और पाप थे, तांत्रिक समाज के लिये वे कर्म साधना के आवश्यक अनुष्ठान-मात्र समझे जाते थे। इस परकोटे में रहने वाले महास्थविर तांत्रिक जीमूत की कठोर साधना की बहुत ख्याति थी।

जीमूत अपनी सिद्धियों, मोहन-उच्चाटन, मारण आदि का प्रयोग कर अपनी शक्ति का व्यय नहीं करते थे। वे जल अथवा अग्नि पर चलने के चमत्कारों का भी प्रदर्शन नहीं करते थे परन्तु तांत्रिक समाज उन की सफलताओं से परिचित था। जन-श्रुति थी कि सिद्ध जीमूत समाधिस्थ होकर आकाश में उठ जाने में भी समर्थ थे। वे मंत्र-शक्ति से हीन धातुओं को स्वर्ण बना सकते थे। वे चरम सिद्धि की साधना कर रहे थे।

अनेक अन्य तांत्रिक ईर्षावश सिद्ध जीमूत की साधना के गुप्त रहस्यों के समाचार पाने की चेष्टा करते रहते थे। ऐसे तांत्रिकों ने सुना था कि तांत्रिक जीमूत कई-कई दिन तक केवल कुटी हुई लाल मिर्च का सेवन उसी प्रकार और परिमाण में करते थे जैसे अन्य भिक्षु जौ के सत्तू का उपयोग करते थे। वे सौ घड़ी तक निष्पलक रहकर दीपक की लौ पर ध्यान केन्द्रित किये रहते थे। वे कई-कई दिन तक तीव्र मद्य के घट के घट पीते रहते थे परन्तु उन के नेत्रों, जिह्वा अथवा पगों में लेशमात्र भी शैथिल्य नहीं आता था।

राजगृह के लक्ष्मीपति श्रेष्ठी तांत्रिक जीमूत के प्रति अनन्य भक्त थे। नगर श्रेष्ठी वसुदत्त ने उन की साधना के लिये सहस्र मुद्रा मूल्य देकर मद्र देश की एक कुमारी षोडषी क्रय करके भैरवी रूप में भेंट कर दी थी।

तंत्र मार्ग की साधना करने वाले ऐसे भी भिक्षु थे जो सिद्ध जीमूत के

कभी चमत्कार प्रदर्शन न करने के कारण उन्हें तंत्र साधना के आडम्बर में भोग-विलास करने वाला कहकर उन की निंदा करते थे परन्तु ऐसे भी भक्त थे जो जीमूत को शारीरिक निग्रह की पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ मानते थे और कहते थे कि जीमूत ऊर्ध्वरेतस थे। वे इच्छा से रेतस का स्खलन कर उसे पुनः ग्रहण कर लेने की क्षमता रखते थे। ऐसी भी किंवदन्ति थी कि जीमूत भैरवी सिद्ध कर चुके थे। तारा की प्रस्तर मूर्ति उन के संकेत पर नृत्य कर उन की साधना क्रियाओं को सम्पन्न करती थी। महाविहार में जीमूत की क्षमता का आदर और आतंक देवाधिदेव महादेव के समान ही था। उन के क्रुद्ध होने पर सर्वनाश की आशंका मानी जाती थी।

एक दिन पहले पहर के अन्त में ही माहुल को समाचार मिला कि सिद्ध तांत्रिक जीमूत ने उसे अपने प्रकोष्ठ में स्मरण किया है। माहुल का हृदय कांप उठा। उसे विश्वास था कि सिद्ध तांत्रिक ने योग-बल द्वारा उस के छिप-छिप कर नारी मूर्ति बनाने के अपराध को जान लिया है। माहुल रक्षा के लिये परित्राण दिवासेना का पाठ करता हुआ, सिर झुकाये सिद्ध जीमूत के आगन के द्वार पर पहुँचा।

सिद्ध जीमूत के अंतेवासी शिष्य ने माहुल को आंगन के भीतर लेकर द्वार मूंद लिया।

सिद्ध जीमूत के आंगन में पांव रखते ही माहुल का मस्तिष्क अप्रिय गंधों से चकरा गया। तीखे कच्चे मद्य और सड़े मांस की गन्ध आ रही थी। अन्तेवासी ने आंगन के भीतर बने कक्ष के द्वार को हाथ से थपथपाया और पुकारा—"भैरवी, कलाकार आ गया है।"

अन्तेवासी शिष्य मुंदे द्वार खुलने से पूर्व ही माहुल से बोला—"सिद्ध स्वयं आदेश देंगे।" और वह आंगन के द्वार के रूप में बनी कोठरी की ओर लौट गया।

कक्ष के मुंदे पट खुले। अप्रिय तीखी गन्धों का एक और झोंका माहुल के मुख पर लगा परन्तु उस की चेतना इन गन्धों को अनुभव न कर सकी। उस के सम्मुख अधखुले द्वार के पट पर हाथ रखे मोटे, मैले वस्त्र से शरीर को ढँके एक नवयुवती खड़ी थी।

माहुल ने नारी के सम्मुख भिक्षु के विनय और शील के अनुसार नेत्र झुका लिये। यदि भिक्षा-पात्र हाथ में होता तो वह पात्र सम्मुख कर नेत्र झुकाये

रहता परन्तु वह भिक्षा के लिये नहीं, सिद्ध का आदेश पाकर आया था। माहुल ने नेत्र उठाकर आज्ञा के लिये नवयुवती की ओर देखा।

नवयुवती के नेत्रों और मुख पर विषाद की गहरी छाया कलाकार की दृष्टि में गड़े बिना न रह सकी। वह युवती किसी शिला के नीचे दबकर भी बढ़ती गई घास की तरह अस्वाभाविक रूप से पीली और श्वेत जान पड़ रही थी परन्तु नवयुवती के कपड़े से उघड़े हुए बाहु और पिंडलियाँ नागदन्त के समान चिकने उज्ज्वल तथा सुस्वरूप थे। वैसा ही रूप जैसा कि माहुल मूर्ति बना सकने के लिये खोजता फिरता था। उस ने रोमांच अनुभव कर नेत्र झुका लिये।

"कलाकार!" माहुल ने नवयुवती का स्वर सुना, "देवी तारा की एक शरीर परिमाण की मूर्ति बनानी होगी। यह सिद्ध का आदेश है।"

माहुल ने दण्ड की आशंका से मुक्ति पाई और मूर्ति के निर्माण के अवसर से उत्साह भी अनुभव किया। उस के झुके हुए नेत्र उठ गये। भैरवी के नेत्रों में क्रोध अथवा शासन नहीं, सहायता की याचना थी। वह बोली—

"सिद्ध, गुह्यकक्ष में योगिनी क्रिया कर रहे हैं। वे सौ घड़ी तक गुह्यकक्ष में समाधिस्थ रहेंगे। कलाकार, तुम इस कक्ष में आकर भग्न-मूर्ति का आकार और आकृति देखो। ऐसा सुना है कि कामाक्ष देश की बनी यह मूर्ति अनुपम सुन्दर मूर्ति थी। सिद्ध का आदेश है कि तुम तारा की वैसी ही मूर्ति बनाओगे कि देखने वाला भेद न कर सके।"

माहुल भैरवी के पीछे कक्ष में गया। कक्ष की एक भित्ती के साथ मूर्ति का आधार अपने स्थान से लुढ़का हुआ पड़ा था और पकी हुई मिट्टी की एक मूर्ति के खण्ड-खण्ड पड़े थे।

माहुल ने मूर्ति के टूटे हुए अंशों में से मुख, जंघा, बाहु आदि के अंश उठाकर देखे और कुछ सोचकर बोला—"देवी, मूर्ति का आधार तो भारी है यह गिर कर कैसे टूट गई?"

भैरवी माहुल के नेत्रों में देखती मौन रह गई और फिर संकोच से बोली—"कलाकार, सत्य है। मूर्ति गिरकर नहीं टूटी। एक बिल्ली मांस का टुकड़ा उठाकर भाग रही थी। मैंने एक लकड़ी फेंक कर बिल्ली को मारी थी, उसी से मूर्ति का ऊपर का खण्ड टुकड़े-टुकड़े हो गया। सिद्ध मेरी मूर्खता से क्रुद्ध होंगे, इस भय से मैंने शेष मूर्ति को लुढ़का कर गिरा दिया। कलाकार, तुम्हारी बहुत ख्याति है। एक मूर्ति बना कर मेरी रक्षा करो। दासी अनुगृहीत होगी।"

माहुल ने तारा की भग्न मूर्ति के खण्डों को जोड़कर रखा और बोला—"क्या ठीक ऐसी ही मूर्ति बनानी होगी ?"

भैरवी ने अनुमोदन में सिर झुकाकर उत्तर दिया।

"ठीक ऐसी मूर्ति बहुत शीघ्र नहीं बन सकेगी। गीली मिट्टी का जल सूर्य ताप से सूखे बिना उसे अग्निताप में पकाया नहीं जा सकेगा। बिना पके वह काली कैसे होगी ?"

भैरवी के नेत्र आशंका से फैल गये। उस ने माहुल से प्रार्थना की—"भंते कलाकार, जैसे भी हो सिद्ध के क्रोध से दासी की रक्षा करें। चाहे मूर्ति को रंग दें। जो कुछ आवश्यक होगा अतेवासी प्रस्तुत करेगा। आहार अथवा पेय जैसी भंते की रुचि होगी, भैरवी प्रस्तुत करेगी। कलाकार सिद्ध के समाधि भंग से पूर्व मूर्ति का निर्माण कर भैरवी की रक्षा करें।"

"भैरवी ?" माहुल ने विस्मय प्रकट किया, "भैरवी कौन ?"

"दासी को सिद्ध भैरवी पुकारते हैं।" भैरवी ने उत्तर दिया।

माहुल ने मुख में आई बात को रोकने के लिये सिर झुका लिया परन्तु उस के हाथों के इंगित से विद्रूप का भाव प्रकट हुए बिना न रह सका।

माहुल के कहने से भैरवी ने अतेवासी को आदेश देकर खोदी नींवों से बहुत सी चिकनी मिट्टी, जल और दूसरे उपकरण प्रस्तुत कर दिये। माहुल ने तीन घडी में ही मूर्ति का आकार सा खड़ा कर दिया। वह मूर्ति के अवयवों की आकृति निखारने लगा तो उसके हाथ शिथिल हो जाने लगे। वह बार-बार भैरवी की ओर देखकर मौन रह जाता।

भैरवी कलाकार की संकोचभरी दृष्टि से स्वयं भी संकोच का माधुर्य और सांत्वना भी अनुभव कर रही थी। वह सहानुभूति से और कलाकार को उत्साहित करने के लिये पूछ लेती—"कलाकार की तृषा निवृत्ति के लिये भैरवी पेय प्रस्तुत करे ?" अथवा "कलाकार की श्रांति दूर करने के लिये भैरवी कुछ आहार प्रस्तुत करे ?"

बार-बार प्रश्न किया जाने पर माहुल बोल उठा—"क्या धर्म के लिये सत्य का विद्रूप आवश्यक है ? क्या कल्पित नारी, यक्षिणी के असतुलित अवयवों को अनुपम सौंदर्य कहना आवश्यक है ? क्या लौकिक नारी के अनुपम सौंदर्य को भैरवी के विकराल नाम से पुकारना धर्म है ?"

भैरवी कातर दृष्टि से माहुल के नेत्रों में देखती रह गई।

माहुल और भी बोल गया—"तारा देवी का मैंने कभी साक्षात्कार नहीं किया। मेरे सन्मुख उपस्थित तुम तारा की इस मूर्ति से कहीं अधिक सुन्दर हो। यदि अनुमति हो तो इस मूर्ति को तुम्हारा ही रूप और आकृति दूं। सिद्ध यदि सत्य के उपासक हैं तो वह इसी से अधिक संतुष्ट होंगे।"

भैरवी का मुख आरक्त हो गया, शरीर ऊष्मा अनुभव कर रोमांचित हो गया। फिर उदासी से उसकी ग्रीवा झुक गयी। वह बोली—"कलाकार, सिद्ध कहते हैं मैं सुन्दर हूं परन्तु मेरे सौन्दर्य का मोह त्याज्य है; जैसे मदिरा का उन्माद त्याज्य है। मेरे सौन्दर्य में लिप्त होना आसक्ति है। सिद्ध मेरे सौन्दर्य से अलिप्त रह कर, मेरा भोग कर वैराग्य की विजय पाते हैं। कलाकार, क्या मेरा शरीर और सौन्दर्य मिट्टी में मिला देने के लिये ही है? मेरी इच्छा कोई वस्तु नहीं है?"

भैरवी के स्वर के क्षोभ से माहुल क्षण भर को चुप रह गया और फिर एक पग भैरवी के समीप होकर बोला—"भैरवी, क्या कहती हो? तुम कल्याणी हो। तुम्हारा रूप लाखों मे एक है। वह ध्रुव नक्षत्र के समान पथ-दर्शक है। तभी तो लोक कहता है कि सिद्ध तुम्हारे रूप के बल से अलौकिक सिद्धि प्राप्त करने के लिए साधना कर रहे हैं।"

माहुल फिर बोला—"लोक सत्य कहता है। जैसे चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से भासमान होता है वैसे ही सिद्ध तुम्हारे रूप के बल से शक्ति प्राप्त करते हैं।"

"सुनो कलाकार!" दीर्घ निश्वास लेकर भैरवी बोली, "सिद्ध क्या साधना कर रहे हैं, मैं समझ नहीं पाती हूं। मैं जानती हूं कि मैं इस आँगन में बंदी हूँ। मैं केवल यातना भोगने के लियं हूँ। जिसे मेरा रूप कहते हैं, उसके कारण शैशव में ही मेरा भाग्य फूट गया था।… जब नौ-दस बरस की थी तभी गाँव के लोगों ने कहा था—यह लड़की अपने रूप के कारण दीन माता-पिता के घर नहीं रुकेगी। यह लड़की कमल पुष्प के समान है जो कीचड़ में उत्पन्न हो कर राजप्रसाद के भोग में आता है।

भैरवी ने पलकों में भर आये आँसू पोंछ कर कहा—"एक रूप-व्यवसायी ने मेरा रूप देखकर मेरे निर्धन पिता के सम्मुख मेरा इतना मूल्य रख दिया कि पिता ने आँखों में आँसू भर कर मुझे उस के हाथों सौंप दिया। तब लोगों ने कहा, इतना रूप एक गृहस्थ में समा नहीं सकेगा, मुझे तो गणिका बनना पड़ेगा। गणिका बन कर मैं अतुल वैभव और विलास पाऊंगी।"

"उस व्यवसायी के यहाँ मुझ पर कड़ी चौकसी रहती थी। वह मेरे कौमार्य को भारी मूल्य में बेचने की आशा बाँधे था। लोग कहते थे, मुझ में अनिर्वचनीय सुख देने की क्षमता है। मेरे मन में उत्सुकता भी थी और आशंका भी। इस रूप के कारण कुछ और ही भवितव्य था। राजगृह के नगरसेठ वसुदत्त ने मेरे रूप की प्रसिद्धि सुनी। वह रूप-व्यवसायी को लुभा सकने योग्य मूल्य देकर मुझे ले आया। सेठ ने मुझे क्रय कर धर्मलाभ की इच्छा से तांत्रिक सिद्ध जीमूत की साधना के लिए संकल्प कर दिया। मैं क्या संतोष देने का उपकरणमात्र हूं ?"

भैरवी ने अपने शरीर को लपेटे मोटे-मैले वस्त्र से अपने नेत्रों में आ गये आँसू पोंछ लिये और कहती गयी—

"तब से मैं इस आँगन में बंदी हूं। सिद्ध साधना के समय के अतिरिक्त मेरे दर्शन से दूर-दूर रहते हैं। वे केवल जड़भाव ग्रहण कर मेरे सम्मुख आते हैं। वे अपने मन को निर्लिप्त रख कर अपने शरीर से मुझे यातना देते हैं। मेरे सौंदर्य का अपमान कर उस से विचलित न होना, यही सिद्ध की साधना है।"

माहुल मूर्ति की बात भूल ही गया था। वह कुछ समय भैरवी की ओर देखता रहा और फिर बोला—"भैरवी, मैं ज्ञानी नहीं हूँ, सिद्ध नहीं हूँ। भिक्षु का भेष धारण करके भी मैं तथ्य-स्थूल संसार से उपराम नहीं हो सका हूँ इसलिए कहता हूँ जो तुम्हारे रूप और लावण्य को अस्वीकार करेगा, वह असत्य विचार और असत्य वचन के पाप का भागी होगा। जो तुम्हारे रूप से अप्रभावित रहेगा, वह जड़ होगा या जड़ता ही उसका लक्ष्य होगा। तुम्हें यातना देकर सौंदर्य का अपमान करने से सिद्ध क्या सामर्थ्य प्राप्त करेंगे, मैं अज्ञानी नहीं जानता ! क्या असत्य भावना को ज्ञान कहा जायगा ?"

भैरवी क्रुद्ध स्वर में बोली—"यातना नहीं तो क्या है ? सिद्ध मुझे अनेक घड़ी तक अपने सामने निरावरण खड़ी रहने का आदेश देकर इस प्रकार देखते रहते हैं मानो मैं जड़ काठ का कुंदा हूं। वे मेरी लज्जा का अपमान कर मुझे मिट्टी कर देते हैं। वे मेरे अंगों का स्पर्श और मर्दन कर मेरी अनुभूतियों का कोई प्रभाव अपने शरीर पर नहीं होने देते। वे अनासक्त रह कर मुझे भोग का साधन बनाते हैं। इसे वे अनासक्त कर्म सिद्धि कहते हैं। कलाकार, बिना अर्थ और भाव के वासना की क्रिया को भोगना क्या यातना नहीं है ?"

भैरवी के नेत्र रक्त हो गये। क्रुद्ध स्वर में उसने माहुल को संबोधित किया—
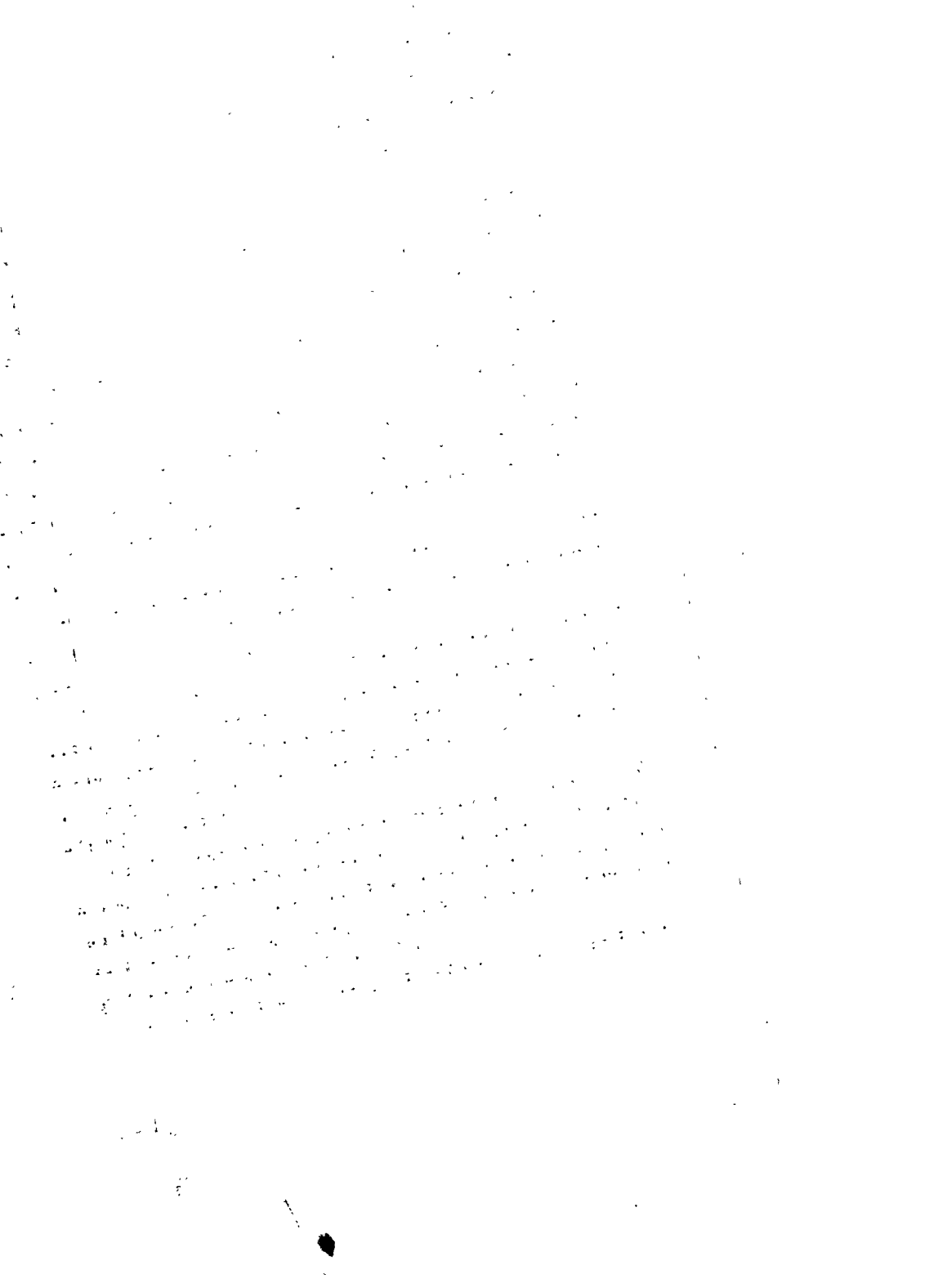
यथा-आज्ञा अनेक घड़ी निरावरण खड़ी रहती थी । भैरवी को ऐसा अभ्यास था पर वह क्रिया भावशून्य रहती थी । कलाकार के अनुरोध ने स्वयं भैरवी में इच्छा को जगा कर इस कार्य को कठिन बना दिया । माहुल के नेत्रों की याचना को अस्वीकार या स्वीकार कर देना कुछ भी सरल न था । भैरवी आशंका और उत्कंठा की व्यग्रता से आरक्त सिर झुकाये थी, उसका शरीर पसीज रहा था ।

माहुल अधीर हो गया । उस ने पुकारा—"देवी ! " " प्रतीक्षा से व्याकुल स्वर शिथिल हो जाने के कारण वह और अधिक न कह सका ।

भैरवी के प्राण इस द्वन्द्व से छटपटा उठे थे । प्रतीक्षा से व्याकुल द्रवित स्वर में वह बोली—"मनुष्य हो तो, यों कह कर क्यों यातना देते हो ?"

भैरवी हाथों से मुंह ढक कर रो पड़ी ।

माहुल भैरवी के रोदन के आह्वान का प्रतिरोध नहीं कर सका ।

× × ×

सूर्यास्त का अंधकार तान्त्रिक जीमूत के आँगन में भर गया तो माहुल और भैरवी अपनी अवस्था के प्रति सचेत हुये ।

माहुल ने टूटते हुये स्वर में कहा—"दिन का अंत···"

भैरवी ने अपने बाहुपाश को और दृढ़ कर, अपना मुख माहुल के हृदय पर दबा कर विरोध किया—"नहीं नहीं, तुम नहीं जाओगे । छोड़ जाओगे तो आत्महत्या कर लूंगी !"

माहुल ने भैरवी को आलिंगन में समेट लिया । कुछ समय पश्चात दोनों को फिर परिस्थिति की चिंता हुई । माहुल को समय पर अपने स्थान पर न पहुंचने की आशंका हुई । भैरवी के लिये माहुल को चले जाने देना किसी प्रकार भी सम्भव न था । एक दूसरे से बिछुड़ने की अपेक्षा वे एक साथ मृत्यु के मुख में जाने के लिए ही तत्पर थे । माहुल और भैरवी रात्रि के अंधकार में तांत्रिक के आंगन की भित्ती पार कर भाग जाने की चिंता करने लगे ।

रात्रि के तीसरे प्रहर जब निस्तब्धता भंग करने के संकोच में वायु भी धीमे बह रही थी, केवल पीपल के कुछ पत्ते ही खड़खड़ कर रहे थे, माहुल ने आंगन की भित्ती पर चढ़ कर भैरवी को उपर खींच लिया । इस प्रकार वे दोनों तीन-तीन प्राचीरें लाँघ कर खेतों में से होते हुये वन प्रदेश की ओर चले गए ।

के लिये संकल्पित अपराधिनी भैरवी को पकड़ कर आँगन में अवश्य लायेंगे।

श्रेष्ठी वसुदत्त भैरवी के भाग जाने के समाचार से दुःखी था। सेठ ने भी पुरस्कार का लोभ देकर अनेक चरों को भैरवी की खोज के लिये भेज दिया था।

भैरवी और माहुल का समाचार पाने के सभी लौकिक उपाय असफल हो जाने पर सिद्ध जीमूत ने अपनी परोक्ष दृष्टि की सिद्धि द्वारा उन्हें देख पाने का यत्न किया। तांत्रिक को स्वीकार करना पड़ा कि चित्त में समाई विकलता के कारण उनका ध्यान समाधिस्थ नहीं हो सका इसलिये उनके ज्ञान-चक्षु परोक्ष को नहीं देख सके। तांत्रिक और भी तिरस्कृत अनुभव करने लगे। चित्त की सम-अवस्था खो कर सिद्धि की शक्ति न गवा देने के लिये भैरवी को पुनः आँगन में ले आना अत्यन्त आवश्यक हो गया।

श्रेष्ठी वसुदत्त सिद्ध जीमूत की साधना में व्याघात आता देखकर सिद्ध के लिये एक नयी भैरवी क्रय कर भेंट करने के लिए प्रस्तुत था।

तांत्रिकों की विडंबना करने वाले भिक्षुओं ने परिहास में कहा—"ज्योतिषी की गणना है कि दूसरी भैरवी भी तांत्रिक जीमूत के आँगन में लाई जाने पर पलायन कर जायगी।"

जीमूत को यह सब लोकापवाद असह्य हो रहा था। अब उनके सामने केवल एक ही लक्ष्य था कि वे भैरवी को लौटा कर लायेंगे ही। जीमूत कल्पना ही कल्पना में देखने लगते कि वे भैरवी को बाँध कर आँगन में ले आये हैं। वह अत्यन्त भय और कातरता से उन की सेवा कर रही है। उस का शरीर पूर्वापेक्षा भी कृप, श्वेत और पीला है। अब वे उस की ओर उपेक्षा की नहीं घृणा की दृष्टि रखते हैं।

×   ×   ×

भैरवी को सिद्ध के कक्ष से पलायन किये छः मास बीत चुके थे। श्रेष्ठी वसुदत्त द्वारा भेजे हुये चरों ने पहले तो समाचार दिया कि माहुल और भैरवी पकड़े जाने के भय से नित्य नये स्थान की ओर चल देते हैं। वर्षाकाल आरम्भ होने पर चरों ने जीमूत को सूचना दी कि नालंदा महाविहार से दस योजन दूर एक महावन में, नगरों में ईंधन और मधु लाकर बेचने वालों की व में माहुल और भैरवी वर्षा के लिये अपना घर बना रहे हैं।

तांत्रिक अपने कुछ शिष्यों, श्रेष्ठी के अनुचरों और राज्य के धर्मास्थान के

चलने के लिये अनभ्यस्त भैरवी के कोमल पांवों में कांटे और कंकरी गड़ कर वह लंगड़ाने लगी। थक जाने से उस के लिये शीघ्र चलना संभव नहीं रहा। माहुल ने उसे कंधे पर उठा लिया और वह नालंदा महाविहार से दूर और दूर भागता चला गया।

× × ×

तांत्रिक सिद्ध जीमूत एक सौ घड़ी की समाधि पूर्ण कर गुह्य गुफा से अपने कक्ष में आये तो उन के पांव डगमगा रहे थे और शरीर अत्यंत क्लांत था। भैरवी पूर्ववत सिद्ध की सेवा में प्रस्तुत न थी। सिद्ध ने भैरवी को व्याघ्र-चर्म बिछा देने के लिये क्षीण स्वर में पुकारा।

कई बार पुकारने पर भी उत्तर न पाने से सिद्ध जीमूत ने उद्विग्न होकर भित्तियों के सहारे से चलते हुए दोनों कक्षों और आंगन में भैरवी को खोजा। तारा की टूटी हुई मूर्ति और मिट्टी की नयी बनती मूर्ति देख कर सिद्ध को विस्मय हुआ परन्तु भैरवी कहां गई, इसका उत्तर न था।

सिद्ध ने असहाय निर्बल अवस्था में सहायता के लिये अंतेवासी को पुकार कर भैरवी के सम्बन्ध में प्रश्न किया।

सिद्ध जीमूत ने सुना कि भैरवी साठ घड़ी पूर्व, तारादेवी की मूर्ति बनाने के लिये बुलाये कलाकार के साथ आँगन की प्राचीर लाँघ कर भाग गई है। सिद्ध मन की उद्विग्नता और शरीर की निर्बलता से, रोगी के समान बाघचर्म पर पड़ गये। अंतेवासी ने उनके लिये आहार और पेय उपस्थित किया परन्तु भैरवी के यों धोखा दे कर भाग जाने की उद्विग्नता में सिद्ध के लिये आहार और पेय ग्रहण करना भी कठिन हो रहा था।

कठिन तपस्या के पश्चात एक मास में शरीर पनप जाने पर भी जीमूत का मन स्वस्थ न हो सका। भैरवी के यों धोखा देकर भाग जाने से उन्हें धर्म की हानि और अपने तेज और सिद्धि का तिरस्कार जान पड़ रहा था।

तांत्रिक जीमूत को शारीरिक सुख की इच्छा और चिंता न थी; भैरवी के अपराध के प्रति क्रोध ही था। अभ्यस्त सुविधा का अभाव उन के क्रोध को उग्र कर रहा था। तांत्रिक अपने अनेक भक्तों और शिष्यों द्वारा निरंतर भैरवी और माहुल का पता लगाने का यत्न करते रहे। धर्म की प्रतिष्ठा के लिये और तंत्र-सिद्धि की साधना के सम्मान के लिये जीमूत की प्रतिज्ञा थी कि साधना

के लिये संकल्पित अपराधिनी भैरवी को पकड़ कर आँगन में अवश्य लायेंगे।

श्रेष्ठी वसुदत्त भैरवी के भाग जाने के समाचार से दुखी था। सेठ ने भी पुरस्कार का लोभ देकर अनेक चरों को भैरवी की खोज के लिये भेज दिया था।

भैरवी और माहुल का समाचार पाने के सभी लौकिक उपाय असफल हो जाने पर सिद्ध जीमूत ने अपनी परोक्ष दृष्टि की सिद्धि द्वारा उन्हें देख पाने का यत्न किया। तांत्रिक को स्वीकार करना पड़ा कि चित्त में समाई विकलता के कारण उनका ध्यान समाधिस्थ नहीं हो सका इसलिये उनके ज्ञान-चक्षु परोक्ष को नहीं देख सके। तांत्रिक और भी तिरस्कृत अनुभव करने लगे। चित्त की सम-अवस्था खो कर सिद्धि की शक्ति न गवा देने के लिये भैरवी को पुनः आँगन में ले आना अत्यन्त आवश्यक हो गया।

श्रेष्ठी वसुदत्त सिद्ध जीमूत की साधना में व्याघात आता देखकर सिद्ध के लिये एक नयी भैरवी क्रय कर भेंट करने के लिए प्रस्तुत था।

तांत्रिकों की विडंबना करने वाले भिक्षुओं ने परिहास में कहा—"ज्योतिषी की गणना है कि दूसरी भैरवी भी तांत्रिक जीमूत के आँगन में लाई जाने पर पलायन कर जायगी।"

जीमूत को यह सब लोकापवाद असह्य हो रहा था। अब उनके सामने केवल एक ही लक्ष्य था कि वे भैरवी को लौटा कर लायेंगे ही। जीमूत कल्पना ही कल्पना में देखने लगते कि वे भैरवी को बाँध कर आंगन में ले आये हैं। वह अत्यन्त भय और कातरता से उन की सेवा कर रही है। उस का शरीर पूर्वापेक्षा भी कृष, श्वेत और पीला है। अब वे उस की ओर उपेक्षा की नहीं घृणा की दृष्टि रखते हैं।

×   ×   ×

भैरवी को सिद्ध के कक्ष से पलायन किये छ मास बीत चुके थे। श्रेष्ठी वसुदत्त द्वारा भेजे हुये चरों ने पहले तो समाचार दिया कि माहुल और भैरवी पकड़े जाने के भय से नित्य नये स्थान की ओर चल देते हैं। वर्षाकाल आरम्भ होने पर चरों ने जीमूत को सूचना दी कि नालंदा महाविहार से दस योजन दूर एक महावन में, नगरों में ईंधन और मधु लाकर बेचने वालों की ब में माहुल और भैरवी वर्षा के लिये अपना घर बना रहे हैं।

तांत्रिक अपने कुछ शिष्यों, श्रेष्ठी के अनुचरों और राज्य के धर्मास्थान के

नारी को प्राप्त करने में अक्षम रहे, अलौकिक सिद्धि क्या प्राप्त करोगे ?"

सिद्ध के साथ आये चतुर शिष्य ने गुरु की असुविधा पहचान कर राजपुरुष के अनुमान के प्रति सन्देह प्रकट कर गुरु के मत का समर्थन किया—"भोग और वासना की तृष्णा से सिद्ध का आँगन छोड़ कर भागी हुई नारी क्या इस घाम में, कीचड़ से सनी हुई श्रम कर सुख पा रही है ? वह नारी तो इस ऊष्णता में शरीर पर चन्दन का लेप किये, किसी प्रकोष्ठ में पर्यंक पर निद्रा में होगी।"

राजपुरुष ने सिद्ध के नवयुवक शिष्य की ओर विडम्बना से देखा और बोला—"भंते, देखते हैं भैरवी गर्भिणी हो चुकी है। भंते ने क्या कभी अंडे देने के उत्साह में पुलकित पक्षियों के जोड़े को नीड़ बनाने की क्रीड़ा नहीं देखी ? उन के सुख को कभी नहीं पहचाना ?"

सिद्ध जीमूत और उनका शिष्य दोनों ही मौन रह कर अपने नीड़ के निर्माण में व्यस्त माहुल और भैरवी की क्रीड़ा देखते रहे।

राजपुरुष कुछ पल सिद्ध के आदेश की प्रतीक्षा कर बोला—"सिद्ध, जातक में इस प्रकार कथा है कि कपिलवस्तु में युवराज सिद्धार्थ के भाई देवदत्त ने एक हंस पक्षी को पकड़ लिया था। सिद्धार्थ ने उस पक्षी को उड़ जाने के लिये स्वतंत्र कर दिया।

"देवदत्त ने सिद्धार्थ के व्यवहार पर क्रोध से आपत्ति की—वह हंस मेरा था। मेरे पकड़े पक्षी को स्वतंत्र करने का तुम्हें अधिकार नहीं था।

"सिद्धार्थ ने उत्तर दिया था—मारने वाले के अधिकार से रक्षा करने वाले का अधिकार बड़ा है। भैरवी सिद्ध के सम्मुख है, राजनियम से सिद्ध के अधिकार में है। सिद्ध उसे बंदी बना लेने का आदेश देते हैं अथवा मुक्त रहने देने का ?"

सिद्ध ने एक दीर्घ निश्वास लिया और दृष्टि परस्पर केलि और विनोद से किलकते माहुल और भैरवी की क्रीड़ा की ओर लगाये ही बोले—"सब लोग जायें। हम अभी यहां यह देखेंगे।"

सिद्ध जीमूत फिर नालन्दा महाविहार में न लौटे। उनके प्रतिद्वंद्वी सिद्ध बहुत समय तक उनके तपोभंग का उपहास करते रहे""

वर्दी

बड़े जमादार बन जाने पर बसंतसिंह को फाटक पर तन कर खड़े रहना, बराबर फाटक खोलना और बन्द करना या एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर में फाइलें पहुंचाने का काम नहीं करना पड़ता था। दफ्तर के बाबू लोग उन्हें पानी का गिलास ला देने के लिये भी नहीं कह सकते थे। बड़े जमादार का काम दूसरे दरबानों, चपरासियों और सफाई करने वालों को ड्यूटी पर लगाना और उनके काम की निगरानी करना था। कम्पनी के हल्के में बसंतसिंह को अब नाम लेकर भी नहीं पुकारा जाता था। कम्पनी के चीफ मैनेजर पागरी साहब उन्हें सरदार पुकारते थे और दूसरे लोग सरदार जी। बड़े जमादार को केवल चीफ साहब, असिस्टेंट मैनेजर, हेड अकाउन्टेंट और महकमों के आला अफसरों को ही सलाम करना पड़ता था।

बसंतसिंह अब भी दूसरे जमादारों की तरह गरमियों में खाकी जीन की और जाड़ों में खाकी गरम कपड़े की वर्दी पहनते थे परन्तु उनके सिर पर लाल पगड़ी रहती और उस पर दरोगा के पद का सुनहरी झब्बा रहता था। वे अपनी लम्बी और अधिकांश में सफेद हो चुकी दाढ़ी को डोरी पर लपेट कर कानों की ओर चढ़ा कर बाँध लेते थे। पेट कुछ बढ़ आया था। जिम्मेदारी और सम्मान का भी बोझ था। चाल उन की बरातियों की सी मन्थर और गम्भीर हो गई थी।

कम्पनी के दफ्तर और गोदामों के हाते में ही दरबानों, चपरासियों और खलासियों के लिये भी क्वार्टर थे। इन्हीं क्वार्टरों में से एक में बड़े जमादार भी रहते थे। सभी चपरासी बड़े जमादार को 'सरदारजी' सम्बोधन करते थे और सामना होते ही 'सतसिरी अकाल' कह कर आदर प्रकट करते थे। चार-पाँच तो बड़े जमादार के अपने गाँव और रिश्ते के ही लोग थे।

बड़े जमादार अनेक वर्ष से विधुर थे परन्तु खाना बनाने या कोठरी में झाड़ू-बुहारी के लिये उन्हें कोई परेशानी नहीं थी। सब चपरासी, दरबान सरदारजी की सेवा के लिए अपने पिता की सेवा से भी अधिक तत्पर रहते थे। एक दरबान समीप के नल से नहाने के लिये पानी की बाल्टी ले आता, दूसरा सुबह ही चूल्हे में आग जला कर उनके लिये छोटी बाल्टी भर चाय तैयार कर देता। सन्ध्या जमादार दफ्तर से लौटते तो दो आदमी उन्हें क्वार्टर तक छोड़ने आते। जब तक जमादार जरा दम लेकर वर्दी उतारते तब तक एक आदमी चूल्हा सुलगा कर चाय के लिये पानी चढ़ा देता। दूसरा उनके खुली हवा में बैठने के लिये आँगन में खाट निकाल कर बिछा देता। ऐसे ही समय पर खाना, झाड़-बुहारी सब हो जाता। बुढ़ापे में जमादार के घुटने गठिया-वाय से दरद करने लगे थे। घुटनों पर गरम तेल की मालिश भी हो जाती। उन्हें कभी-पीने के लिये, घड़े से लोटे या गिलास में पानी भी उड़ेलना न पड़ता।

जमादार केवल एक काम सतर्कता के लिये अपने हाथों करते थे। वह था सरकारी वर्दी और साफे को तह कर रखना। सरदारजी सरकारी वर्दी-साफे की बहुत इज्जत करते थे क्योंकि वही उनकी इज्जत का आधार थे।

कम्पनी में सरदारजी की प्रतिष्ठा का प्रभाव उनके गाँव तक भी था। वे गाँव जाते तो गाँव का साहू दीनानाथ उनके बैठने के लिये मोढ़ा या खाट बिछवा देता। परिवार के सब काम उन के परामर्श से ही होते थे। सरदारजी के दोनों छोटे भाई घर की जमीन पर खेती करते थे। दो भतीजों को सरदारजी ने कम्पनी में नौकरी दिलवा दी थी। दूसरे दो लड़के घर पर खेती के काम में हाथ बटा रहे थे।

जमादार के सब से छोटे भाई सावनसिंह का सब से छोटा लड़का ब्यन्तसिंह भी भैंस की पीठ पर सवारी करके घर के जानवरों को चराता और उन्हें गाँव के छप्पड़ (पोखर) में पानी पिलाता बारह बरस का हो गया था। ब्यन्तसिंह ने बचपन से अच्छा खाया-पिया था, हाथ-पाँव खुले और शरीर की हड्डी चौड़ी थी। शहर में अपने ताऊ के बड़े जमादार होने का अहंकार भी था। लड़का किसी के खेत से ईख और किसी के खेत से मूली उखाड़ लेता। कुएँ से पानी लाती लड़कियों से उस के उलझने और दूसरे लड़कों से मारपीट करने की शिकायतें भी आने लगीं। बड़े सरदारजी ने उसे मदरसे में बैठा देने का परामर्श दे दिया था कि कम से कम घर का एक लड़का तो पढ़-लिख जाये।

व्यन्तसिंह ने बीस बरस की उम्र में मिडिल पास किया तो स्वभाव में गम्भीरता आ गई थी। वह ढंग से सँवारकर, चिकना कर साफा बांधने लगा और टखनों तक नीचा पायजामा पहनने का शौक भी हो गया। अब वह हल में जुते बैलों की जांघों में लकड़ी चुभो-चुभो कर, तत्त-तत्त कर उन्हें हांकने में और पांस (गोवर-मैले) के ढेर सिर पर उठाकर खेतों में पहुंचाने में क्या सन्तोष पाता ? पढ़-लिख कर दरबानी करना भी उसे न जँचा।

व्यन्तसिंह के गांव से मील भर के फासले पर फिल्लोर की सड़क थी। सड़क पर तेजी से आती-जाती मोटरों और लारियों को देखना उसे बहुत अच्छा लगता था। गांव का जवान नत्था फिल्लोर में एक मोटर कम्पनी में क्लीनरी करता था। व्यन्त भी उस के साथ ही भाग गया।

व्यन्तसिंह ने दो-ढाई मास एक मोटर का माल दूसरी मोटर में ढोने की मज़दूरी की। ड्राइवरों से परिचय हो जाने पर क्लीनर का काम मिल गया। साल समाप्त होते-होते वह मोटर भी चलाने लगा। व्यन्तसिंह मोटर खूब भरोसे और उत्साह से चलाता था। रात के लम्बे सफर में माल के ट्रक के ड्राइवर गाड़ी उसे सौंप कर स्वयं सोया करते थे। कुछ मास में व्यन्त ने ड्राइवरी का लाइसेंस भी ले लिया।

व्यन्तसिंह को 'दोआबा ट्रांसपोर्ट' कम्पनी में ड्राइवर की नौकरी मिल गई। व्यन्तसिंह हाथ-पैर का चुस्त था। बाइस बरस का हुआ तो उस का जूड़ा धरती से छः फुट छः इंच से ऊँचा उठ गया, देखने में पच्चीस बरस का जवान जँचता। सुडौल शरीर, गेहुँआ चेहरे पर नई उठी घनी, काले रेशम जैसी दाढ़ी-मूँछ की गोट शक्ति, प्रभाव और विश्वास प्रकट करती थी।

व्यन्तसिंह को ड्राइवर की नौकरी मिलते ही झंझट भी सामने आने लगे। अपने शरीर के उठान और रूप-रंग के अनुसार ही उस के मन में उत्साह और महत्वकांक्षा भी थी। उस की कल्पना में अपने ताऊ का आदर्श था। बचपन में ताऊ से सुने उपदेशों और प्रसंगों के आधार पर उस का विश्वास था कि सफलता और उन्नति की सीढ़ी काम में तत्परता और स्वामी-भक्ति है।

व्यन्त को न अपने आराम का खयाल था, न समय का। उस का उदाहरण ड्राइवरों के लिए असुविधा का कारण बन जाता। व्यन्त के दूसरे साथी ने उस से चिढ़ कर 'दोआबा ट्रांसपोर्ट' कम्पनी में उसका रहना असम्भव

ब्यन्तसिंह को भी विश्वास था कि लाहौर जैसे बड़े शहर में, उस के ताऊ के प्रभाव से ड्राइवरी की अच्छी नौकरी मिलने में उसे कठिनाई नहीं होगी। ब्यंतसिंह लाहौर पहुँचा और करालपुर में जी० सी० कम्पनी का पता पूछता हुआ रात पड़ते-पड़ते अपने ताऊ के क्वार्टर में पहुंच गया।

बड़े जमादार सरदार वसंतसिंह ने लड़के को, घरबार का काम छोड़कर नौकरी ढूंढते फिरने के लिये, बुजुर्गों की रीति के अनुसार धमकाया कि उस ने बड़े-बूढ़ों के सिर पर रहते, उनसे पूछे बिना इधर-उधर मारे-मारे फिरने की मूर्खता क्यों की। ब्यन्त के अपनी शरण में लौट आने से उन्हें सतोष भी हुआ।

सरदारजी को कम्पनी के सभी मामलों की खबर रहती थी। उन्हें मालूम था कि चीफ साहब ने अपने बंगले की गाड़ी और पुराने ड्राइवर को दफ्तर के काम में बदली कर दिया था। पुराना ड्राइवर रशीदखा बूढ़ा होकर बहुत ऊंचा सुनने लगा था।

साहब को नयी से नयी गाड़ी रखने का शौक था। एक बिलकुल नयी बहुत लम्बी, सुरमई रंग की गाड़ी उन्हों ने बम्बई से मंगवाई थी। इस गाड़ी को साहब खुद ही ड्राइव करते थे परन्तु नयी गाड़ी के रूप-रंग के अनुरूप एक ड्राइवर की जरूरत तो थी ही। कई लोग आ चुके थे परन्तु साहब को कोई जंचा नहीं था।

दूसरे दिन सरदारजी ने संध्या समय दफ्तर से लौटकर वर्दी नहीं उतारी। दो चपरासियों को बंगले पर भेज कर साहब के चाय पी चुकने के समय का पता लिया। साहब संध्या की चाय के बाद पाइप पीते हुये कुछ देर तक अखबार देखते थे। उस समय खुश-मिजाज भी रहते थे।

सरदारजी ने अपनी वर्दी की सलवटें खींच कर ठीक कीं। पेटी के बिल्ले को लाल ईंट के चूर्ण से चमकाया। बंगले पर पहुंच कर साहब के बैरे गुलाब को सलाम कर उस के हाथ भीतर साहब को सलाम भेजा।

सरदारजी ने भीतर आकर साहब को पहले फौजी सलाम किया और फिर फर्शी सलाम किया और मालिक का नमक पीढ़ी दर पीढ़ी हलाल करते रह सकने के लिये अपने जवान, चतुर ड्राइवर बेटे को साहब के कदमों में शरण दी जाने की प्रार्थना की।

साहब को खास गाड़ी के लिये ड्राइवर चाहिये था। सरदारजी जानते थे कि साहब सफाई और कायदे के मामले में बिलकुल अंग्रेज थे इसलिये ब्यन्तसिंह

दूसरे दिन नहा-धोकर, धुला हुआ खाकी साफा सफाई से बांधकर और धुला हुआ कमीज़-पयजामा पहन कर सरदारजी के साथ साहब के मुआयने के लिये पेश हुआ। व्यन्तसिंह फौजी कायदे से एड़ियां जोड़े और सीधी बाहें कमर के साथ सटाये तनकर खड़ा हुआ था। अपने ताऊ से भी आधा वालिस्त सिर निकाले, सुडौल, छरहरा सुदर्शन जवान। उस के चोरी-चकारी करके भाग जाने की भी आशंका नहीं थी।

व्यन्तसिंह साहब को जंच गया। साहब ने उसी समय लाहौर की बड़ी अंग्रेजी दुकान का सूचीपत्र मंगवाया और अपनी नयी, अट्ठाइस हज़ार रुपये की गाड़ी के अनुरूप ड्राइवर के लिये वर्दी का आर्डर दे दिया। वर्दी सात दिन में मिलनी थी। साहब बिना वर्दी का ड्राइवर पसंद नहीं करते थे इसलिये व्यन्तसिंह सात दिन तक कम्पनी की दूसरी गाड़ियों और ट्रकों पर काम करता रहा।

व्यन्तसिंह ने अंग्रेजी दुकान से आयी वर्दी पहन कर चुस्ती से साफा बांधा तो देखकर सरदारजी का कलेजा संतोष से छलक उठा और दूसरे चपरासियों और ड्राइवरों के कलेजे पर सांप लोट गये। नीली बनात का बंद गले का कोट और पतलून। कोट के सीने पर लाल बनात की शील्ड पीतल के पालिशदार चमकते हुए बटनों से टंकी हुई थी। शील्ड पर जरी में सुनहले अक्षर जी० सी० सी० कढ़े हुए थे। कोट के किनारों और पतलून की लम्बाई में सीवनों के बीच से लाल गोट चमक रही थी। सफ़ाई से बंधे साफ़े के एक ओर सुनहली झालर लगी हुई थी। कमर पर चमड़े की पालिशदार पेटी और वैसे ही बूट। बूटों को छूती हुई पतलून के कारण मोजों का न होना खटकता नहीं था। यदि शील्ड पर बने हुए कम्पनी के नाम के अक्षरों पर ध्यान न जाता तो लोग व्यन्तसिंह को किसी रियासत का युवराज ही समझ लेते।

व्यन्तसिंह अपनी वर्दी की प्रतिष्ठा को न समझता हो, सो बात नहीं थी। वर्दी पहन कर वह और भी चुस्ती से तन कर चलने लगा। सरदारजी के हुक्म के अनुसार व्यन्त सुबह आठ बजे से भी कुछ पहले ही वर्दी पहन कर साहब के बंगले पर उपस्थित हो गया। गाड़ी को बहुत ध्यान से पोंछा। टायरों तक से मिट्टी का दाग-धब्बा साफ कर दिया और गाड़ी को गैराज से निकाल कर ड्योढ़ी में खड़ा कर दिया।

साहब दस बजे दफ्तर जाने के लिये निकले। व्यन्तसिंह ने सलूट कर उन

के लिये गाड़ी का दरवाजा खोला और खूब सफाई और मुलायमियत से गाड़ी को चला कर दफ्तर की ड्योढ़ी के ऐन बीचोबीच लाकर गाड़ी खड़ी कर दी। वह चुस्ती से गाड़ी से उतरा और साहब के लिये दरवाजा खोल कर फिर सलूट कर दिया।

साहब से हुक्म पाकर व्यन्त गाड़ी बंगले पर लौटा ले गया। मेमसाहब ग्यारह बजे मालरोड पर कुछ दुकानों में गयीं और दो बंगलों में जाकर साढ़े बारह बजे बंगले पर लौट आयीं।

व्यन्तसिंह को गाड़ी दफ्तर ले जाने का हुक्म मिला। साहब एक बजे लंच खाने के लिये बंगले पर आये और दो बजे फिर दफ्तर पहुंचे। पांच बजे वे फिर बंगले पर लौटे। व्यन्तसिंह को निठल्ले बैठे समय बिताना भारी जान पड रहा था। वह बार-बार गाड़ी को पोंछता या अपनी वर्दी पर आ पड़े धूल के कणों को चुटकी से झाड़ता रहा।

साढ़े सात बजे साहब मेमसाहब के साथ एक दावत में गये। बड़े लोगों की बहुत बड़ी दावत थी। पचासों मोटरें थीं, बहुत से वर्दी पहने ड्राइवर थे परन्तु सब की नजरें व्यन्तसिंह पर आकर गड़ जाती थीं। व्यन्तसिंह पर एक सरूर-सा छा रहा था। जाड़े की ओस में बाहर सड़क पर भी उसे हल्का-हल्का पसीना आ रहा था, जैसे बहुत अच्छा बराबर का लगा पान खाने से अनुभव होता है।

दावत के बाद दस बजे व्यन्तसिंह ने मोटर बंगले की ड्योढ़ी में रोक कर दरवाजा खोलते हुए सलूट किया। साहब पहले उतरकर, मेमसाहब को बरामदे की सीढ़ियाँ चढ़ जाने देने के लिये खड़े रहे। मेमसाहब के कमरे के दरवाजे तक पहुँच जाने पर साहब ने व्यन्तसिंह को हुक्म दिया—"गाड़ी अभी इधर छोड़ो, चाबी हम को दो। तुम को छुट्टी। सुबह आठ बजे आयगा।"

व्यन्तसिंह ने गाड़ी की चाबी साहब के हाथ में सौंप कर सलाम कर दिया। समझदार आदमी था, अनुमान कर लिया कि साहब कहीं अकेला जायगा। उस ने कपड़ा लेकर गाड़ी को एक बार और पोंछ दिया और लौटने के लिये बंगले के फाटक की ओर चल दिया। सोच रहा था, जाकर बड़े सरदारजी को अपनी पहले दिन की कारगुजारी सुनायेगा।

व्यन्तसिंह फाटक से निकल रहा था तो समीप खड़े पूरबिया चौकीदार ने उसे पुकार लिया और हाथ पर सुरती मलते हुये पूछा—"सरदारजी जा रहे हो, फाटक बन्द कर दें ?"

व्यन्तसिंह ने अपना अनुमान प्रकट किया—"अभी साहब बाहर जायेंगे।"

उसी समय ड्योढ़ी की ओर से मोटर की दैत्यकार आँखों से रोशनी की किरणें फाटक तक सड़क पर फैल गईं। फाटक के एक पल्ले को चौकीदार ने और दूसरे को व्यन्तसिंह ने पूरा खोल दिया।

व्यन्तसिंह मोटर को रास्ता देने के लिये, अदब से फाटक के खम्भे के साथ चिपक गया था। मोटर फाटक में आ पहुँची। उस का हाथ चुस्ती से सलूट में माथे पर पहुंच गया।

"सुअर का बच्चा!" व्यन्तसिंह को साहब का क्रुद्ध स्वर सुनाई दिया, "यह वर्दी तुम्हारे बाप का है? वर्दी पहनकर चकले में सैर के लिये जायगा?"

गाड़ी ब्रेक लगने से रुक गई थी। व्यन्तसिंह सलूट के लिये माथे पर हाथ रखे स्तब्ध रह गया।

साहब ने उस की ओर मुंह करके कहा—"खबरदार, यह वर्दी सिर्फ़ हमारी नौकरी की वर्दी है, सिर्फ ड्यूटी पर पहनेगा। तुम्हारा कपड़ा नहीं है कि रात में पहनकर सैर करेगा। वर्दी उतार कर गराज में रखकर जायगा।"

साहब फटकार बताकर और हुक्म देकर चले गये।

व्यन्तसिंह सांस रोके खड़ा था। साहब के चले जाने पर उसे सांस आया। शरीर पसीना-पसीना हो गया था। वह कुछ पल निश्चल खड़ा रहा और फिर गराज की ओर चल दिया। उसे जान पड़ रहा था, शरीर पर वर्दी नहीं मैला लिपटा है और उस से मुक्ति पाने की छटपटाहट थी।

वर्दी उतारकर मोटर की छत पर पटकते हुए व्यन्तसिंह को खयाल आया, बंगले से क्वार्टरों तक सड़क पर क्या पहनकर जायगा? लाहौर में दिसम्बर मास की सर्दी भी कम नहीं होती।

इस विचार ने भी वर्दी के प्रति घृणा को कम नहीं किया। व्यन्तसिंह सिक्ख सम्प्रदाय के पाँच नियमों के अनुसार, पायजामे-पतलून के नीचे कमर में कच्छा (कमर तक जांघिया) अनिवार्य रूप से पहनता था। जाड़े की रात में सर्दी से शरीर कंटकित हो जाने की भी परवाह न कर, केवल कच्छा मात्र पहने व्यन्त अपने ताऊ के क्वार्टर में पहुँचा।

सरदार बसन्तसिंह खाट पर लेटे थे। एक जमादार उन के घुटने दबा रहा था। व्यन्त को देखकर सब लोग हैरान रह गये।

सरदारजी कड़े जाड़े में लड़के के शरीर पर कोई कपड़ा न देखकर घबराहट

में उठ बैठे—"हैं, यह क्या ? वर्दी क्या हुई ?"

व्यन्तसिंह सर्दी के कारण बजते दाँतों से काँपती और क्रोध से हकला गई आवाज़ में गाली देकर चिल्ला उठा—"........ऐसी-तैसी वर्दी की।...... हर समय नौकर बने रहें ? कभी तो आदमी बन सकते हैं !"

निरापद

"अबे, यह तेरे बाप की चौपाल है ?" सिपाही ने विक्टोरिया पार्क की एक बेंच पर सोये हुए सूरज की बांह झटक कर उसे उठा दिया।

सूरज गहरी नींद में था। सर्दी के कारण घुटने समेटे, सिकुड़ा हुआ भी था। बाग में पड़ी खाली बेंच पर सो जाने से सिपाही के नाराज होने का कारण वह समझ न सका था। बेंच पर सोने से पहले वह यही सोच-समझ कर वहां सोया था कि उस जगह सो जाने में कोई आपत्ति नहीं करेगा।

सिपाही ने सूरज की नींद तोड़ने के लिये उसे कान से पकड़, उस का सिर झिंझोड़ कर बहुत निरादर से धमकाया—"अबे, बोलता क्यों नहीं, गूंगा है ? घर तेरा कहां है ? क्या काम करता है ?"

सुध सँभाल सकने पर सूरज ने परिस्थिति का संकट समझा। वह वर्दी पहने, सरकार के प्रतिनिधि सिपाही के सामने आदर प्रकट करने के लिये सीधा खड़ा हो गया। पांच कक्षा के स्कूल में पढ़ते समय जब मास्टर साहब नाराज होकर उसे मारने-पीटने के लिये बुलाते थे, वह इसी तरह मार खाने के लिये चुपचाप खड़ा हो जाता था।

सूरज ने साहस से सिपाही को उत्तर दिया—"हुजूर, घर पहाड़ में है। नौकरी ढूंढ़ने आया हूँ।"

"सब साले चोर नौकरी ढूंढ़ने ही आते हैं।" सिपाही ने अविश्वास प्रकट किया, "किस के यहाँ ठहरा है, उस का पता बता ? यह जगह तेरे बाप की है ? साला लाट साहब की तरह सरकारी पारक में विरंच पर सो रहा है।"

सूरज ने गिड़गिड़ा कर बताया कि वह तीन दिन पहले पहाड़ से आया था। पड़ोस के गांव के एक आदमी के यहां दो दिन ठहरा था। जब उस ने और रखने से इन्कार कर दिया तो सुबह से जगह-जगह घूम रहा था। नौकरी नहीं मिल सकी थी।

सिपाही ने उसकी जेब टटोल कर देखी। जेब में बस कागज का एक टुकड़ा था जिस पर चन्दरसिंह पहाड़ी का पता था। चंदरसिंह 'लालबाग' में जगतसिंह ठेकेदार की कोठी पर चौकीदारी करता था। चंदरसिंह का अपना चचेरा भाई भी नौकरी खोजने आया हुआ था। चन्दरसिंह किस-किस को अपने घर बैठाकर खिलाता। उसने सूरज को दो दिन टिकाकर अपना रास्ता नापने को कह दिया था।

सूरज ने अपना अपराध स्वयं ही स्वीकार कर लिया था। वह बेरोजगार था और बेघरबार था। यही तो 'दफा १०९' का अपराध है।

सरकार जानती है, साधन और सम्पत्ति के बिना कोई जीवित नहीं रह सकता इसलिये प्रजा की रक्षा के लिये सम्पत्ति की रक्षा करना सरकार का धर्म है। बेघरबार और बेरोजगार सम्पत्तिहीनों से सम्पत्तिवानों को सदा ही भय और आशंका है। जीवित रह सकने के लिये वे किसी न किसी की सम्पत्ति पर हाथ मारेंगे ही। सरकार की दृष्टि में यह बात स्वाभाविक है इस-लिये सरकार ने उन्हें बाँधकर रखने का कानून बना दिया है।

सूरज की जेब में कुछ न था पर सिपाही के पास उसे कोतवाली ले जाये बिना चारा ही क्या था? टके-पैसे का लाभ न हो तो कारगुजारी तो हो!

सूरज दरवाजे में लोहे के सींखचे लगी कोठरी में बन्द किये जाते समय काँप रहा था। पछता रहा था, अपना घर छोड़कर क्यों आया पर घर वह शौक से छोड़कर नहीं आया था। बन्द कर दिया गया तो कई मिनट आँसू बहते रहे। ताला लगा कर कोठरी में बन्द कर दिया जाने पर सूरज को लगा कि उसे सन्दूक में बन्द कर दिया गया है या धरती के नीचे गाड़ दिया गया है। सोच रहा था, इस से तो पहाड़ में भूखा मर जाता तो भी अच्छा था।

कुछ मिनट बाद सूरज ने अनुभव किया कि वह कैद की कोठरी में, पार्क की बेंच पर काटते मच्छरों और ओस की ठिठुरन की अपेक्षा बुरी अवस्था में नहीं था परन्तु मन किसी अज्ञात, कल्पनातीत भय से दबा जा रहा था।

दूसरे दिन सुबह एकपहर दिन चढ़े एक सिपाही ने उस से कड़े स्वर में पूछा—"क्यों बे, चार आने का क्या लेगा?"

सूरज कुछ न समझकर सिपाही की ओर कातर भाव से देखता रहा।

सिपाही ने समझाया—सरकार हवालात में बन्द लोगों को चार आना खुराक के लिये देती है। वह क्या खाना चाहता है।

सिपाही की बात समझकर सूरज को और भी विस्मय हुआ, पिछले कितने ही दिनों में ऐसा खयाल तो उस का किसी ने नहीं किया था।

सचमुच, दो रोटी पर रखी दाल उस के हाथों में थमा दी गई।

सूरज ने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए और दया की भिक्षा मांगते हुए कोतवाली के मुंशी जी के सामने और फिर मजिस्ट्रेट के भी सामने अपने निरपराध होने की जो दुहाई दी थी, वह उस के बेघरबार होने और बेरोजगार होने के रूप में अपने अपराध की स्वीकृति भी थी।

सूरज इस बात का कोई कारण न बता सका कि वह धर्मशाला में न ठहरकर पार्क में क्यों सोया हुआ था। साथ कोई सामान न होने से धर्मशाला के मुंशी जी ने उसे क्यों वहाँ टिकने नहीं दिया था।

× × ×

जेल की हवालात में सूरज का मन भयभीत था। वह लोहे के जंगलों और ईंटों की ऊंची दीवारों से निकल कर भाग जाने के लिये छटपटा रहा था। उस का मन चाहता था, वह गली-बाजार में पहुँच जाये और दुकान-दुकान और घर-घर घूमकर पूछे—हुजूर, नौकर चाहिये ? इस प्रकार तीन दिन घूमने का अनुभव भी याद था। वह भूखा दुकान-दुकान और घर-घर घूमता रहा था। किसी दरवाजे के सामने जाकर संकोच से सकपकाते हुए वह पूछता–नौकर चाहिये, हुजूर !

अधिकांश जगह संक्षिप्त उत्तर था––नहीं। कई जगह उस का नाम-धाम पूछकर प्रश्न किया जाता था, पहले कहाँ काम किया है ? कोई तुम्हारा जामिन है ? एक-दो समझदार लोगों ने यह भी सुझाया कि थाने में जाकर अपना नाम-धाम लिखाकर पुर्जा लिखा लाओ कि इस आदमी का ठौर-ठिकाना ठीक है।

जेल की हवालात में उसे भूख लगते ही गेहूँ की रोटी और दाल, पीतल के तसले-कटोरी में मिल जाती थी। रात में सोने के लिये निर्विवाद जगह थी। ओढ़ने के लिये चादर और बिछाने के लिये मूंज का टाट था। मन पर जेल का आतंक था परन्तु उसे सुख ही सुख था।

दिन में वह दूसरे हवालातियों की बातें और मजाक सुनता रहता। दो-चार आदमी उस की तरह मुंह लटकाये थे, शेष मजे में थे। हवालाती लोग

आपस में कानून के दाव-पेंचों और अदालत में सफाई देने के ढंग एक-दूसरे को बताते रहते थे।

जेब काटने के अपराध में पकड़ा गया आदमी चोरी के अपराध में पकड़े गये आदमी को घृणा से देखता था और डकैती के अपराध में पकड़ कर लाया गया जेब काटने के अपराधी के सामने अकड़ कर चलता था। सब से हीन स्थिति थी सूरज और उस जैसे अपराधियों की, जो अपराध-जगत के किसी भी कौशल या वीरता का गर्व नहीं कर सकते थे। उन के लिये 'लुटिया-चोट्टे' और 'बछिया के ताऊ' का तिरस्कार पूर्ण सम्बोधन था। दूसरे लोग उनकी कातरता देख कर हंस देते थे।

पन्द्रह दिन तक सूरज की जमानत देने कोई नहीं आया तो उसे अदालत में ले जाकर सुना दिया गया कि उसे बेरोजगार और बेघरबार घूमने के अपराध में एक बरस कड़ी जेल की सजा दी गई है। कड़ी जेल का अर्थ था उसे जेल में कड़ा श्रम करना पड़ेगा।

सजा का हुक्म हो जाने पर सूरज को दूसरे हाते और बारिक में बदल दिया गया। वह घर से जो फटे-पुराने कपड़े पहनकर आया था उनकी जगह उसे जेल की फटी-पुरानी वर्दी दे दी गयी। अब उसे कभी बान बटना पड़ता, कभी दूसरे कैदियों के साथ कुएँ से पानी निकालने के लिए चरसा खींचना पड़ता। कुछ दिन चक्की भी पीसनी पड़ी। कभी उसे जेल की तरकारी की खेती में काम करना पड़ता।

सूरज के लिए काम कोई कठिन न था। काम हो तो वह करना चाहता था। ढूंढने से काम नहीं मिला था, अब जबरदस्ती करवाया जा रहा था। यह जबरदस्ती उसे खल नहीं रही थी। नौ छटांक रोटी-दाल और तरकारी की चिंता न थी। दुख था तो केवल मन में बसे अपमान का कि वह जेल में था और साथ के कैदी उसे दफा १०९ का 'चोट्टा-बेकार' आदमी समझ कर तिरस्कार से देखते थे।

× × ×

सूरज दस मास जेल काट लेने और दो मास की मुआफी मिलने पर जब जेल से छूट रहा था तो मन में उत्साह था कि अब वह बाहर घूम-घूम कर नौकरी ढूंढ लेगा। वह लखनऊ में ही गिरफ्तार हुआ था इसलिये छूटते समय

उसे घर पहुंचने तक का किराया मिलने का भी प्रश्न न था। जेल के नियम के अनुसार उसे दिन भर की खुराक के लिए केवल छः आने दे दिये गये और उसके वही फटे-पुराने कपड़े, जिन्हें पहनकर वह जेल आया था, जेल के कपड़े वापिस लेकर लौटा दिये गये।

सूरज दस मास जेल में बिताकर नौकरी ढूंढ़ने चला तो झिझक और संकोच और भी अधिक था। पहले कहां, क्या काम करता था ? इस प्रश्न का उत्तर वह क्या देगा ? इस प्रश्न की आशंका की छाप उसके चेहरे पर बहुत स्पष्ट थी। ऐसी अवस्था में उसके प्रति किसे विश्वास होता ? यह जान लेने पर कि वह जेल से छूट कर आया है, उसे नौकर रखने की मूर्खता कौन करता ?

रात का पहला पहर बीतते-बीतते सूरज फिर उसी संकट की अवस्था में था। किफायत करके दो आने बचा लेने के कारण वह भूखा भी था। इस बार वह उतना अनुभवहीन न था कि पार्क में जाकर सो जाता और फिर सीधा जेल पहुंच जाता।

जेल में विशेष दुख न पाने पर भी बन्धन का भय और अपमान की आशंका तो थी परन्तु मन यह भी सोच रहा था कि यों भूखे और बेआसरे रहने से तो जेल में ही आराम था। जेल में पाये ज्ञान के आधार पर सूरज रात बिताने के लिए लखनऊ के 'चारबाग' स्टेशन के तीसरे दर्जे के मुसाफिर-खाने में जाकर लेट रहा।

रात भर के सोच-विचार के पश्चात दूसरे दिन सूरज को नौकरी की तलाश के लिए घूमते फिरना व्यर्थ जान पड़ रहा था। वह समझ चुका था, नौकरी उसे नहीं मिलेगी। उसे शरण केवल जेल में मिल सकती है परन्तु स्वयं जेल में जाकर स्थान मांगने से तो जेल में स्थान नहीं मिल सकता था।

सूरज संध्या समय फिर विक्टोरिया पार्क की बेंच पर जा लेटा। प्रतीक्षा में था कि सिपाही उसे जेल लिवा ले जाने के लिए बुलाने आयेगा। लोग कहते हैं, मौत को ढूंढ़ने से मौत भी बगल बचाकर निकल जाती है। सूरज को सोते-जागते रात बीत गई। उस रात सिपाही उसे पकड़ने आया ही नहीं।

भूख से व्याकुल सूरज का तीसरा दिन बीतना और भी कठिन हो गया। उत्साह से उसने तीन-चार जगह काम मांगने के लिए बात की। पिछले दिन धन में से दो पैसे के चने लेकर चबाये। ऐसा संकट तो जेल में एक

दिन भी नहीं झेला था। पार्क की बेंच पर लेटकर ओस और मच्छरों का शिकार बनने से क्या लाभ था ?

सूरज फिर स्टेशन पर तीसरे दर्जे के मुसाफिरखाने में जा पहुंचा। मुसाफिरखाने में एक साथ यात्रा करने वाले लोग एक-एक जगह घेरकर बैठे या बिस्तर लगाकर लेटे हुए थे। कुछ लोग रोटी, पूरी या सत्तू खा रहे थे। कुछ बीड़ी-सिगरेट पीकर या केवल बतियाकर समय काट रहे थे। कुछ नींद में बेखबर खुर्राटे लेते सो रहे थे।

एक भला आदमी लम्बाई में दोहरी की हुई दरी पर खेस बिछाये अपना सामान तकिये की तरह सिर के नीचे दबाये लेटा हुआ था। गरमी के कारण धोती घुटनों तक उठा ली थी। कुर्ता भी उतार दिया था। केवल बंडी पहने था। उस के पास की जगह खाली थी। सूरज कुछ स्थान छोड़कर वहीं फर्श पर लेट गया था। कभी थकावट से आँखें मुंदने लगती और कभी भूख से आँखें खोले सोचने लगता, करे तो क्या करे ?

समीप लेटे आदमी की नाक धीमे-धीमे बजने लगी परन्तु सूरज का ध्यान उस ओर न था।

सहसा सूरज ने घबड़ाई हुई आवाज सुनी—ऐं ! ग्यारह बज गये !

उस के समीप लेटा आदमी बहुत उतावली में कुर्ता पहन कर जल्दी-जल्दी बिस्तर लपेट कर प्लेटफार्म के दरवाजे की ओर भाग चला। इस उतावली और जल्दबाजी में भूरे रंग का एक बड़ा-सा बटुआ उसके सामान से फिसलकर फर्श पर ही रह गया।

सूरज ने बटुआ देख लिया था। वह कुछ झिझका और फिर हाथ बढ़ाकर उसने बटुआ उठा लिया। बटुए को उसने न खोला, न छिपाया, हाथ में लिये बैठा रहा। पाच-छ: मिनट गये, वह निश्चल बैठा रहा।

"हम यहीं लेटे थे।" सूरज ने ऊँचे स्वर में सुना और देखा, वही आदमी अपने बिस्तर को बगल में दबाये और एक सिपाही को साथ लिये बदहवासी में उसी की तरफ लपका आ रहा था।

सूरज तुरत समझ गया। बटुआ थामे हाथ उसने आदमी की तरफ बढ़ा दिया और बोला—"यह बिस्तर में से गिर गया था।"

भले आदमी ने बटुआ सूरज के हाथ से झपट कर छाती से लगा लिया और फिर सोच कर बोला—"हम पहले कहे देते हैं, बटुए में सात सौ रुपये थे।"

उसने सिपाही के सामने रुपये गिने, रुपये पूरे थे। वह सिपाही को साथ आने की कृपा के लिये धन्यवाद देने लगा।

सहायता मांगने वाले आदमी का तो संकट दूर हो चुका था परंतु सिपाही चोरी के अपराध को कैसे नजरअंदाज कर देता। उसने आग्रह किया--"नहीं साहब, थाने में चलकर रपट लिखाइये। इस चोर को भी साथ चलना होगा।"

सूरज ने एक बार फिर कहा--"हुजूर, बटुआ विस्तर से गिर गया था, हमने निकाला नहीं।"

सिपाही ने एक गाली दे और एक चपत उसके सिर पर देकर, डांटकर चुप करा दिया।

सिपाही चोरी की रपट करने वाले और चोर को लिये स्टेशन के थाने में जा पहुँचा।

थाने में मुंशीजी रपट को आराम से ब्योरेवार लिखना चाहते थे। इस झगड़े में मुसाफिर को गाड़ी छूट जाने की आशंका थी। वह बार-बार कहे जा रहा था--"हुजूर, हम यह कहाँ कह रहे हैं कि बटुआ चोरी से निकाला गया, शायद गिर ही गया होगा। हमें रपट लिखाने की क्या जरूरत है?"

शीघ्र छुटकारा पाने के लिये उसने सलामी के दो रुपये मुंशीजी के सामने रख दिये और अपना पता लिखाकर विस्तर उठाये चलता बना।

स्टेशन के थाने का सिपाही सूरज को सींखचे लगी कोठरी में बंद कर ही रहा था कि बड़े दारोगा साहब रौंद पर आ गये। सूरज की ओर देख कर उन्होंने पूछ ही लिया--"यह किस जुर्म में आया है?" और एक कुर्सी पर बैठ कर उन्होंने सिगरेट सुलगा ली।

सूरज को पकड़ कर लाने वाला सिपाही अभी मौजूद था। उसने एड़ियाँ जोड़े घुटने सीधे कर अकड़ी हुई बाँह से दारोगा जी को सलूट कर संक्षेप में बयान दिया--"एक मुसाफिर ने बटुआ चोरी जाने की शिकायत हम से की थी। हम मुसाफिर को लेकर मौके पर पहुंचे और वहाँ इस आदमी के पास से बटुआ बरामद कर मुसाफिर को दिला दिया।"

दारोगा साहब ने चुपचाप सिगरेट के दो कश खींचे और सूरज को समीप बुलाकर पूछा--"क्यों बे मादर·······बटुआ कैसे निकाला था?"

सूरज भयभीत सा चुप रह गया। उस के पास कोई उत्तर था ही नहीं।

दारोगा साहब ने फिर पूछा--"अबे बटुआ निकालकर भाग क्यों नहीं

गया ? वहीं ही बैठा रहा ? जेल जाने का शौक है ?"

सूरज फिर भी चुप रहा।

दारोगा साहब ने एक और कश खींचा और पूछा—"अबे, पहले कभी चोरी की है ?"

सूरज ने इनकार में सिर हिला दिया।

दारोगा साहब ने फिर पूछा—"बटुआ तूने चुराया था ?"

सूरज सोच में चुप रहा। प्रश्न दुबारा पूछा जाने पर उसने स्वीकृति में सिर झुका दिया।

दारोगा साहब ने उसकी ओर झुककर और ध्यान से देखकर फिर पूछा—"क्यों; क्या जेल जाना चाहता है ?"

सूरज ने तुरन्त स्वीकृति में सिर झुका दिया।

दारोगा साहब के चेहरे पर मुस्कान आ गई, बोले—"अबे, बिना कुछ करे-धरे ही जेल जायगा ? जेल में क्या हराम की रोटी रखी है ? उस के लिये सीने में दम चाहिये बेटा !"

दारोगा साहब ने सूरज को पकड़ कर लाने वाले सिपाही को ओर देख कर सम्बोधन किया—"जमादार, यह चोर की शकल है ? निरे पोंगे हो तुम ? जेल में क्या ऐसे कूड़े-कबाड़ को भेजा जाता है ? साला हराम की खाने के लिये झूठा जुर्म कबूल रहा है। निकालो साले नकारे को यहाँ से चूतड़ों पर दो लात देकर।"

दारोगा साहब के हुक्म से सूरज को थाने के पिछवाड़े के दरवाजे से गरदनियाँ देकर निकाल दिया गया।

इस बार सूरज को जेल में शरण देने से भी इन्कार कर दिया गया; पुलिस जान गयी थी कि वह 'निरापद' था।

सामन्ती कृपा

यूनियन हाल में कुमार के चित्रों की प्रदर्शनी थी। उस ने महीना भर बहुत दौड़-धूप की थी। अपनी कठिनाइयों की उपेक्षा कर और श्री राज्यपाल की सुविधा का ख्याल कर उस ने प्रदर्शनी का उद्घाटन श्री राज्यपाल के कर-कमलों से करवा लेने की व्यवस्था कर ली थी।

कुमार का गणेश बाबू से परिचय है। गणेश बाबू प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक के उप-सम्पादक हैं। वे उदीयमान कलाकारों पर कृपा रखते हैं। पत्रों में प्रदर्शनी, चित्रों और चित्रकार के सम्बन्ध में सराहनापूर्ण टिप्पणी छप जाना सहायक होता है इसलिये कुमार ने गणेश बाबू को 'समारोह' की शोभा बढ़ाने के लिये अपने हाथों निमंत्रण-पत्र देकर उद्घाटन के समय पधारने का अनुरोध किया था।

गणेश बाबू रास्ता काटने के लिये मुझे साथ लिये कुछ विलम्ब से प्रदर्शनी में पहुँचे थे। राज्यपाल प्रदर्शनी का उद्घाटन कर लौट चुके थे। दर्शकों की संख्या बहुत कम नहीं थी। राज्यपाल की उपस्थिति के प्रति आदर प्रकट करने के लिये बड़े लोग भी काफी संख्या में आये हुये थे। राज्यपाल के चले जाने पर वे लोग भी लौट रहे थे।

हम लोग चित्र देखने के लिये हाल का चक्कर लगाने लगे। कई चित्र बहुत अच्छे थे। केवल तीन-चार चित्रों पर ही 'सोल्ड' का लाल पुर्जा लगा दिखाई दिया। यह चित्र भी कम मूल्य, अर्थात सौ रुपये से कम मूल्यों के ही थे। लगभग चार सौ रुपये की विक्री हुई थी।

प्रदर्शनी का चक्कर लगा कर गणेश बाबू बोले—"चलो कुमार से पूछ लें, राज्यपाल ने अपने उद्घाटन भाषण में क्या कहा ? अच्छे चित्रों की अपेक्षा राज्यपाल की बात की 'न्यूजवेल्यू' अधिक होती है मित्र !"

कुमार के पास पहुंच कर गणेश बाबू ने तीन-चार चित्रों की सराहना की।

कुमार के समीप खड़ा, चेहरे पर सहानुभूति की छाप लिये उसका एक मित्र बोल उठा—"चित्र अच्छे होने से क्या होता है ? 'कला के लिये कला' तो ठीक है परन्तु कला पेट के लिये भी तो है। असली चीज तो है बिक्री। बिक्री जो होती है, वह पहले दिन ही हो जाती है। एक नुमाइश में कुल साढ़े तीन-चार सो की तसवीरें बिक गईं तो आर्टिस्ट का क्या बनता है ? आर्टिस्ट क्या खाये और क्या आर्ट बनाये ?"

कुमार का दूसरा साथी बोल उठा—"भैया, कला और कलाकारों के दिन गये। अब तो जनता का राज है। लगड़ा लगड़े को क्या कंधा देगा ? जनता के मिनिस्टर हैं। उन्हें केवल वोट से मतलब है, कला से नहीं। कला की कद्र तो राजा, रईसों और सामन्तों के जमाने में थी। अजी साहब, वह जमाना ही और था। राजा लोग एक बोल के लिये कवि की झोली मोतियों से भर देते थे, एक-एक छंद और दोहे के लिए एक-एक गांव दे डालते थे। जमींदारों और ताल्लुकेदारों के जमाने तक भी गनीमत थी। हर अच्छा जमीन्दार गवर्नर का पोर्ट्रेट खरीदता था। अपना और अपने स्वर्गीय पिता का आयल पोर्ट्रेट बनवाता था। वे लोग नुमाइश में आते थे तो अपने रोब-रुतबे के खयाल से ही हजार-डेढ़-हजार के पेन्टिंग खरीद लेते थे। उन लोगों के पास था तो खर्च भी करते थे। भैया, चना चबाओगे तो डकार बादाम के थोड़े ही आयेंगे ?"

इस सहानुभूति से कुमार को सान्त्वना मिल रही थी; खरीदने वाले न सही, उसके चित्रों की सराहना करने वाले तो हैं।

कुमार अपने साथियों के समर्थन में बोल उठा—"और नहीं तो क्या, आज कोई बनाकर दिखा दे ताजबीबी का रोजा ! कोई उत्साह बढ़ाने वाला नहीं तो कलाकार क्या करें ? हम लोगों के भाग्य तो सामन्तों-रईसों के साथ उजड़ गये।"

गणेश बाबू अनुभव की धूप से श्वेत हुए अपने घुंघराले केशों पर हाथ फेरते हुए मुस्कराकर बोल उठे—"बुरा न मान लेना भैया, कला की सामन्ती कद्र का कुछ अनुभव है तुम्हें ?" उन्होंने नौजवानों के चेहरों पर अनुमान की नजर दौड़ाई, "तुम्हारी उम्र ही अभी क्या है ? हमें अनुभव है, सुनो !"

गणेश बाबू ने विश्राम से खड़े होने के लिए दायें पांव पर बोझ डाल कर

बांया पांव जरा आगे खिसका दिया और हाथ में थमी दो पत्रिकाओं को रूल की तरह लपेटते हुए सुनाने लगे—

"हम सन् १९२० में एम० ए० पास करके गवर्मेंट कालिज में लेक्चरार बन गये थे। असहयोग आन्दोलन चला तो सरकारी नौकरी छोड़ दी। दो बरस गले में झोली डालकर कांग्रेस का काम किया परन्तु जब बड़े भाई ने हमारे बीवी-बच्चों का बोझ उम्र भर न उठाने की धमकी दे दी तो मजबूर हो गये। लकड़ी की टाल या परचून की दुकान चला लेने लायक पूंजी, अनुभव और साहस भी न था।

"कांग्रेस के एक प्रभावशाली नेता ने अपने मित्र एक राजा साहब से हमारी सिफारिश कर दी थी। राजा साहब शिक्षा और कला के प्रेमी प्रसिद्ध थे। कांग्रेसी नेताओं से भी हेल-मेल रखते थे। राजा साहब ने हमें ढाई सौ रुपये माहवार पर अपना सेक्रेटरी नियुक्त कर लिया। हमने समझा, भाग खुल गये·······?"

कुमार के मित्र ने टोक दिया—"भाग खुल जाने में कसर ही क्या रह गई थी? उस जमाने के ढाई सौ आज के आठ सौ, हजार समझिये? साहब, जमीन्दारों का बड़ा जिगरा था·······"

गणेश बाबू नौजवान को चुप रहने का संकेत करते हुए बोले—"हमने भी यही समझा था भैया, तुम सुनो तो! कालिज में डेढ़ सौ मासिक ही पाते थे, यहां ढाई सौ मिला। गांव में रहने के लिए अच्छा बड़ा मकान था। नौकर-चाकर, सवारी सब मुफ्त। देहात में सस्ता भी था। अब भी तीस बरस पत्रकारिता करके सात सौ ही पा रहे हैं। सवारी के नाम पर समझो रिक्शा या साइकिलरिक्शा ही भाग में आता है। डाइरेक्टर की पालिसी का अंकुश सदा गर्दन पर बना रहता है। तब मोटर पर चलते थे और अपने आपको महाराज का मंत्री समझते थे।

राजा साहब केन्द्रीय असेम्बली के मेम्बर थे। हमारा काम था, कभी राजा साहब के लिए असेम्बली में पूछने के लिये दो-चार प्रश्न बना लेना। दो-चार अखबार आते थे। अखबार हमारे लिये ही थे। [illegible] कभी [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

बार भेंट करनी पड़ी।

सोचा, जीवन में कुछ करने का समय मिला है। राजा साहब को एक पुस्तकालय बनाने का सुझाव दिया। राजा साहब ने पंडित मोतीलाल नेहरू, सर सप्रू के कानूनी पुस्तकों के पुस्तकालय देखे थे। वे जानते थे महाराज गोमन के यहाँ और गवर्मेंट हाउस में भी पुस्तकालय है।

राजा साहब ने हुक्म दिया, पुस्तकालय बहुत बढ़िया बनना चाहिये। वर्मा टीक की शीशेदार आलमारियों के लिये बरेली आर्डर भेज दिया गया। हम साहित्य और आलोचना की नयी-नयी पुस्तकें मंगवा कर पढ़ा करते थे। विचार था, स्थायी मूल्य की कोई चीज लिख सकेंगे। हमने मध्यकालीन और आधुनिक कवियों का तुलनात्मक अध्ययन आरम्भ कर दिया। खूब विशद नोट लेने लगे। समय अच्छा बीत रहा था।

एक दिन इलाहाबाद में राजा साहब के किसी प्रभावशाली मित्र का परिचय-पत्र लेकर एक तिवारी जी के आगमन की तिथि की सूचना मिली। तिवारी जी के लिये अगवानी में चिरला स्टेशन पर मोटर भेज दी गयी।

तिवारीजी के आने का उद्देश्य इलाहाबाद में राष्ट्रीय रंग-मंच की स्थापना के लिये जमींदारों से चन्दा इकट्ठा करना था।

तिवारी जी के ठहरने-खाने की समुचित व्यवस्था कर दी गयी। सेवा के लिये दो कहार नियत कर दिये गये थे। मुलाकात के लिये उन्हें दूसरे दिन सन्ध्या समय मुसाहबों की महफिल में बुलाने का निश्चय किया गया था।

तिवारी जी बड़े आदमी का परिचय-पत्र लेकर आये थे। उनकी उपस्थिति के विचार से उस दिन पेशकार ने महफिल का प्रबन्ध विशेष ध्यान से करवाया था।

गरमी के दिन थे। महफिल हवेली के आंगन में लगी थी। नित्य से कुछ अधिक छिड़काव करवाया गया था। तख्त पर नदी सफेद चादर बिछवाई गयी थी। मसनदों के गिलाफ बदले गये थे। पीकदान मंगवाये गये थे। महाराज की आराम कुर्सी के पीछे एक की जगह दो आदमी बड़े-बड़े पंखे लेकर खड़े हुये थे। एक पंखे वाला तख्त के पीछे भी खड़ा किया गया था। खास इत्रदान खोला गया था। पान के बीड़ों पर चांदी के वर्क लगे थे। गुलाब जल छिड़कने को चांदी की सुराही मौजूद थी। नीचे फर्श पर भी जाजम बिछाई गई थी। पेशकार और कुछ लोग तख्त पर बैठे थे। हमारे और तिवारी जी

के लिए दो कुर्सियां थीं । दूसरे लोग नीचे जाजम पर बैठे थे ।

रंगमंच की स्थापना का बीड़ा उठाये तिवारी जी का अध्ययन अच्छा था और वाणी में भी ओज था । उन्होंने राष्ट्रीय संस्कृति और राष्ट्र उत्थान के लिये रंग-मंच का महत्व प्रभावोत्पादक ढंग से बताया और कहा—"वर्ष में एक बार रामलीला के रूप में धर्म की विजय और पाप के पराभव का दृश्य देखकर हमारे जन-साधारण कितना चरित्रबल पाते हैं ।"

एक मुसाहब ने तुरन्त याद दिलाया—"चिरला की इतनी बड़ी रामलीला तो महाराज के दम से ही हो रही है । बड़े महाराज के ज़माने से रामलीला का पाँच सौ रुपये सालाना बंधा चला आ रहा है । अजोध्यापति के मन्दिर का भी पाँच सौ सालाना रियासत से जाता है ।" उन्होंने आंखों में चुनौती भर कर सब लोगों की ओर ऐसे देखा मानो वे अपने ही दान का बखान कर रहे हों ।

तिवारी जी ने स्वीकृति में हामी भरी और बोले—"भारत की इस दुरावस्था में भी कालीदास के कारण भारत का सिर संसार में ऊंचा है । जर्मन कवि गेटे ने कहा है—"कालीदास की शकुंतला अजर और अमर है ।"

राजा साहब खूब बड़ी आराम कुर्सी पर पसरे हुए दूर रखा हुक्का लम्बी सटक से गुड़गुड़ा रहे थे । निगाली मुंह से निकाल कर उन्होंने ह्विस्की के प्रभाव से गुलाबी आँखें झपका कर अनुमोदन किया—"हाँ, हाँ, सही फर्मा रहें हैं आप । हम खूब जानते हैं । कालीदास को खूब जानते हैं । अरे साहब, उनके क्या कहने हैं; बहुत नाम पैदा किया है ।"

तिवारी जी ने अनुमोदन किया—"महाराज तो सब जानते ही हैं । महाराज की लायब्रेरी में कालीदास की सभी रचनायें होंगी । जिस लायब्रेरी में कालीदास और शेक्सपियर नहीं, वह लायब्रेरी क्या ?"

तिवारी जी ने अंग्रेजी के एक महान लेखक का उद्धरण दिया—"यदि तराजू के एक पलड़े में ब्रिटेन के पूरे साम्राज्य का धन रख दिया जाये और दूसरे पलड़े में शेक्सपियर के नाटकों को तो शेक्सपियर के नाटकों का ही पलड़ा भारी रहेगा । ब्रिटेन अपना साम्राज्य खोकर भी जीवित रह सकता है तो केवल इसीलिये कि उसके पास शेक्सपियर है ।"

राजा साहब ने अनुमोदन में सिर हिलाया और बोले—"हम जानते हैं, खूब जानते हैं । शेक्सपियर का क्या कहना ? कलम तोड़ दी है पट्ठे ने !"

राजा साहब को शायद ताल्लुकेदार स्कूल में पढ़ी 'लैम्ब्स टेल्स आफ

शेक्सपियर' कुछ-कुछ याद आ रही होगी, बोले—"शेक्सपियर का क्या कहना। उसके बराबर लिखने वाला दुनिया में नहीं हुआ। हमने पढ़ा है। हमें खूब याद है, हमें बहुत पसन्द है।"

एक और मुसाहिब बोल उठे—"हाँ हुजूर, इसमें क्या शक है। शेक्पीर बड़े क्यों नहीं होंगे? महाराज की उन पर मेहरबानी हैं तो उनका मुकाबला कौन कर सकता है? हम कहते हैं सरकार की परवरिश हो तो क्या है, दस शेक्पीर और बीस कालीदास हो सकते हैं क्या नही; क्यों सिकत्तर साहब?"

हमारे कुछ बोल सकने से पहले ही एक मुसाहिब ने उसका समर्थन किया—"महाराज किसका ख्याल नहीं करते; किसकी परवरिश नहीं करते!"

"तिवारी जी को भी अनुमोदन में सिर हिलाते देख हमें अच्छा नहीं लगा पर चुप रह गये।

तिवारी जी ने फिर रंग-मंच द्वारा राष्ट्र में प्राण फूकने की आवश्यकता पर बल दिया और बोले—"महाराज ने तो शेक्सपियर को खुद बहुत पढ़ा है। महाराज खुद जानते हैं और सभी बड़े-बड़े पारखी लोग कहते हैं कि नाटक तो असल में रंगमंच की चीज है।"

तिवारी जी शेक्सपियर की विशेषतायें याद दिलाने लगे। उन्होंने 'मरचेंट आफ वीनस' में कौतुक का जिक्र किया और 'ओथेलो' में डेस्डीमोना की साधुता का वर्णन किया, 'जूलियस सीजर' में ब्रूटस के मानसिक संघर्ष की याद दिलायी। उसके बाद शेक्सपियर के दूसरे नाटकों 'मैकबेथ' और 'ट्वेलव्थ नाइट' की भी चर्चा करने लगे।

हम ने तिवारी जी के शेक्सपियर के अध्ययन और उन की स्मृति की सराहना की।

तिवारी जी उत्साह से बोले—"हमने शेक्सपियर के सत्रह नाटकों का गहरा अध्ययन और मनन किया है परन्तु फिर भी ऐसा जान पड़ता है कि उस अथाह सागर से केवल एक चुल्लू भर जल पी पाये हैं। शेक्सपियर तो असीम है। जिस ने शेक्सपियर के नाटक न पढ़े हों उसे विलायत में पढ़ा-लिखा ही नहीं समझा जाता।"

सब लोग विस्मय से फैली आँखों से तिवारी जी की ओर देख रहे थे। राजा साहब के हुक्के की गुड़गुड़ाहट भी बन्द हो गई थी। उन की गर्दन मानो सिर के बोझ से कन्धों के बीच धँस गई थी और नेत्र एकटक तिवारी

जी की ओर लगे हुए थे।

तिवारी जी की बात समाप्त होते ही राजा साहब गर्दन उठा कर ऊँचे स्वर में बोल उठे—"हमने शेक्सपियर के बहत्तर ड्रामे पढ़े हैं!"

हम मुंह बाये राजा साहब की ओर देखते रह गये। बेबसी में मुंह से निकल गया—"जनाब, शेक्सपियर के तो कुल पैंतीस नाटक हैं। दो नाटकों 'पैरीक्लिस' और 'टीट्स एंड्रोनिकस' में उस का सहयोग-मात्र ही बताया जाता है।"

महाराज के हाथ से हुक्के की निगाली गिर पड़ी। गुलाबी आँखें अंगारा हो गईं। उठने की तत्परता में आराम कुर्सी की दोनों बाहों पर हाथ टिकाकर उन्होंने हमें मां-बहिन से बुरे सम्बन्ध की गालियाँ दीं और फिर हमारी मां-बहिन से बलात्कार करने की घोषणा की और थुथलाते हुए चीख उठे—"निकल जा यहाँ से नमक हराम! तू हमारा नौकर है कि शेक्सपियर के बाप का? निकाल दो साले को इसी दम रियासत से बाहर! कोई है, लगाओ इस नमकहराम को दस जूते!"

महाराज की छाया की तरह सदा साथ रहने वाले दो गुइँत समीप ही खड़े थे। यह लोग हमें सिकत्तर साहब कह-कह कर, झुक-झुक कर सलाम करते थे। महाराज का क्रोध भाँप कर आगे बढ़ आये। उनकी दृष्टि महाराज की ओर थी। वे महाराज का आदेश पूरा करने के लिये संकेत की प्रतीक्षा में थे परन्तु महाराज ने क्रोध की थकावट से आंखें मूंद कर अपना सिर कुर्सी के तकिये से लगा लिया था।

हम साहित्य और शेक्सपियर के प्रति न्याय की रक्षा के लिये महाराज की बात काट देने के अपराध से स्तम्भित चुप खड़े थे।

मुसाहिब लोग महाराज के समर्थन में हमारी ओर ग्लानि भरी दृष्टि से देख रहे थे।

चुप्पी के इस आतंक को महाराज के मुंह लगे पेशकार ने तोड़ा, बोले—"ये आये हैं बड़े शेकपीर के दादा। जैसे शेकपीर इनके ही घर का खाते थे। अंगरेजी क्या पढ़ गये आंखों का अदब-सील ही मिट गया, महाराज से भी बड़े आलिम बन गये।"

हम सिर झुकाये महफिल से उठ कर अपने मकान में चले गये। तुरन्त असबाब बांधा। रात पड़ रही थी परन्तु अब रियासत में क्षण भर रहना भी सम्भव नहीं था।

जिससे महाराज अप्रसन्न हो गये थे उसका असवाब उठा कर कौन ले जाता ? चिराला स्टेशन तक चार मील पैदल जाकर मुहमांगा दाम देने का आश्वासन देकर एक बैलगाड़ी लिवा लाये और स्टेशन पर पहुँच कर सांस ली।

गणेश बाबू बोले—"आप ही लोग सोचिये, सामन्त की कृपा की आश्रित कला किसके लिये होगी ? कला के लिये या सामन्त के लिये ?"

देवी की लीला

सेन्ट्रल सेक्रेटेरियट, दिल्ली के एकाउण्ट्स विभाग में जालंधर (दोआवे) के लोगों की बहुतायत बहुत समय से चली आ रही है। सरकारी नौकरों की यह परम्परा है कि अपनी जात-विरादरी या प्रदेश के लोगों को ही अपने दफ्तर में जगह दिलाने का यत्न करते हैं इसलिये देवीलाल को उस दफ्तर में नौकरी मिल गई थी। नौकरी का एक वर्ष पूरा होने पर विवाह भी हो गया। विवाह के पश्चात डेढ़ बरस और बीत गया।

देवीलाल की बहुत इच्छा थी कि पत्नी को दिल्ली ले आये परन्तु दिल्ली में एक कमरे का ही किराया सुनकर उस के शरीर के रोम खड़े हो जाते। ग़रीब क्लर्क की तनख्वाह ! देवीलाल को कुछ बूढ़े माँ-बाप और छोटे भाइयों की पढ़ाई में सहायता के लिये घर भी भेजना ही चाहिये था। आखिर दोआवे के भाइयों की सहायता से मकान अर्थात एक कोठरी भी उसे मिल गई।

सेक्रेटेरियट से लगभग छः मील दूर, सब्ज़ीमण्डी के शक्तिनगर मुहल्ले में एक आंगनदार मकान के एक-एक कमरे में जालंधर ज़िले के बहुत से परिवार रहते हैं। नीचे की मंजिल के परिवारों ने अपने चूल्हे आंगन में बना लिये हैं और ऊपर की मंजिल के परिवार बराम्दों में अँगीठी रखकर खाना पका लेते हैं। इस कमरे का भी किराया देवीलाल को तीस रुपया माहवार देना पड़ता है तिस पर बस का खर्चा दस आने नित्य का, पांच आने दफ्तर जाने के और पाँच आने दफ्तर से लौटने के। आने-जाने के लिये दस आने दे देना देवीलाल को ऐसे जान पड़ता जैसे बसूले से उस का मांस काट लिया गया हो। वह या तो सुबह जल्दी घर से पैदल चल देता या लौटते समय पैदल आ जाता परन्तु थकान कितनी हो जाती !

देवीलाल ने महीनों सिर-तोड़ यत्न किया कि नई दिल्ली के समीप पहाड़गंज

या पंचकुइयाँ रोड पर कोई कोठरी मिल जाये और प्रति मास बस के किराये का अठारह-उन्नीस रुपये का खर्च बच जाये लेकिन उन स्थानों में किराया शक्तिनगर की कोठरी के किराये और बस का खर्चा मिलाकर भी अधिक था।

सेक्रेटेरियट में पाँच बजे छुट्टी होने पर सेक्रेटरी या साहब लोग उन की प्रतीक्षा में खड़ी गाड़ियों पर भर लौट जाते हैं। सेक्रेटेरियट के साइकिल वाले बाबू लोग झुण्ड के झुण्ड सड़कों पर ऐसे छूटते हैं जैसे पकी फसल के खेत पर बैठा हज़ारों पक्षियों का झुण्ड, बीच में गोफिये से फेंका पत्थर आ गिरने पर उड़ जाता है या सूर्यास्त के समय दिल्ली नगर से लाखों कौवे एक साथ जमना-पार के जंगलों की ओर उड़ चलते हैं।

देवीलाल ने दफ्तर से गाड़ियों पर लौटने वाले साहब लोगों से कभी ईर्ष्या नहीं की। ऐसे ही उस ने मोटरें पास होते हुए भी सेक्रेटेरियट के समीप की सड़कों पर बगीचों से घिरे दस-बारह कमरों के बँगलों में रहने वाले बड़े लोगों से भी ईर्ष्या नहीं की। वे साहब या बड़े लोग तो प्राणी ही दूसरे लोक के हैं। मनुष्य भगवान की शक्ति और सामर्थ्य से ईर्ष्या नहीं करता। मनुष्य अपने जैसे मनुष्य से ही ईर्ष्या करता है। देवीलाल ने जब कभी सोचा, पहाड़गंज या पचकुइयाँ रोड पर ही सस्ती कोठरी पा जाने का स्वप्न देखा, या कल्पना की कि वह भी एक साइकिल खरीद पाता तो अठारह-बीस रुपये माहवार बच जाते।

देवीलाल कई बार, कई नामों की साइकिलों के दाम पूछ चुका था। गये साल तक अच्छी देसी साइकिल सवा सौ रुपये में मिल सकती थी। बस के छः मास के किराये में ही साइकिल के दाम पूरे हो जाते और फिर फायदा ही फायदा था। लोग यह भी कहते थे कि देसी साइकिल का क्या भरोसा? जाने सड़क पर कब धोखा दे जाये और आदमी हाथ-पांव से भी जाये। एक बार पैसा खर्चना है तो विलायती, पक्की साइकिल लो कि उम्र भर काम आये। लोग बताने लगते फलाने ने बीस बरस पहले विलायती साइकल खरीदी थी, अब भी जैसी की तैसी चल रही है। विलायती साइकिल सवा दो सौ से कम में मिलती नहीं थी। बरस भर में बस के किराये की बचत से यह रकम भी पूरी हो जाती परन्तु एक साथ इतना रुपया आता कहां से? देवीलाल पचास-साठ रुपये ही जमा कर पाता कि इतने में घर से किसी विशेष आवश्यकता का पत्र आ जाता और देवीलाल को कुछ और रुपया घर मनीआर्डर से भेज देना पड़ता।

देवीलाल आठवें-दसवें घर में कमला से साइकिल खरीदने के सम्बन्ध में
ात करता रहता था। कमला सान्त्वना देती थी—"घबराते क्यों हो, रुपये हो
ही जायंगे।"

कमला कभी साइकिल खरीदने के लिये अपना लाकेट या सोने की दो चूड़ियां बेच देने की इच्छा भी प्रकट कर देती, कहती—"बस का किराया बचेगा तो फिर बनवा लेंगे।

कमला के मन में पति को साइकिल पर सवार घर से जाते और लौटते देखने की बड़ी साध थी। पड़ोस में दो बाबुओं के पास साइकिलें थीं। उन का रोब मालूम होता था। कमला मन ही मन सोचती उस का पति दफ्तर से साइकिल पर लौट कर घंटी बजा कर अपने आने का संकेत करेगा। वह झट से किवाड़ खोल कर मुसकरा देगी। कभी छुट्टी के दिन वह साइकिल पर पति के पीछे बैठ कर नईदिल्ली चली जाया करेगी। दूसरी कई स्त्रियां भी तो जाती हैं। इसमें शरम क्या? यह दिल्ली है, कोई गांव देहात थोड़े ही है परन्तु देवीलाल को साइकिल के लिये पत्नी का गहना बेचना पसन्द न था।

देवीलाल के घर के गांव में देवी का मंदिर है। उस के घर में देवी की पूजा की परम्परा है। वह कभी 'तीस-हजारी' की ओर से जाता तो देवी का दर्शन करना न भूलता और साइकिल खरीद सकने की क्षमता के वरदान के लिये प्रार्थना भी कर लेता। वह देवी के स्तोत्र का भी पाठ करता था। कमला पड़ोसिनों के साथ मंगलवार के दिन महावीरजी के दर्शन के लिए जाती तो मन ही मन पति के लिये साइकिल की भिक्षा मांग आती।

मार्च महीने की पहली तारीख की संध्या को दफ्तर से लौटकर तनख्वाह पत्नी के हाथ पर रखते हुए देवीलाल ने कहा—"इस में से बीस रुपये साइकिल वाले रुपयों में डाल देना, अस्सी तो हो गये। नये साल की जनवरी में साइकिल ले ही लूंगा।"

कमला ने प्यार से कहा—"रब्ब (भगवान) करे उस से पहले ही लो।"

अगले दिन देवीलाल दफ्तर से लौटा तो उसे दूध का गिलास थमाते हुए कमला ने कसम दिलाकर कहा—"नाराज न हो तो एक बात कहूं।"

देवीलाल ने कसम खा ली तो कमला ने बताया कि वह पड़ोसिनों के साथ दोपहर में चांदनी-चौक गई थी। उसका लाकेट पुराने फैशन का था। उसने लाकेट सर्राफ के यहाँ पच्चानवे रुपये में बेच दिया है। पति से छिपा

कर उसने पचास रुपये अलग से बचा रखे थे। उसने अपनी कसम दिलाकर अनुरोध किया कि देवीलाल विलायती साइकिल जरूर ले ले।

कमला के त्याग और स्नेह से देवीलाल की आंखें भीग गईं।

अगले दिन देवीलाल दो समझदार पड़ोसियों को परामर्श के लिए साथ लेकर नई विलायती साइकिल खरीद लाया। रात में कोठरी में रखी साइकिल खूब चमक रही थी। साइकिल को स्टैंड पर खड़ा कर, पैडल को पाँव से घुमाकर देवीलाल ने साइकिल का पिछला पहिया खूब जोर से चला कर कहा—"देख, कितनी तेज चलती है।" और फिर ब्रेक दबाकर पहिये को सहसा रोक दिया। कमला को बहुत अच्छा लग रहा था। साइकिल से नये रोगन और चमड़े की नई गद्दी की सोंधी-सोंधी गंध आ रही थी।

देवीलाल ने बताया—"इस के लिये एक मजबूत जंजीर और पक्का ताला भी खरीदना होगा।"

कमला ने समर्थन किया—"हाँ-हाँ। सवा दो सौ की चीज है।"

कमला ने साइकिल को प्यार से छुआ। उस रात दोनों को जान पड़ा जैसे उन के जीवन का नया अध्याय आरम्भ हुआ है।

दूसरे दिन देवीलाल ने दफ्तर जाने से पहले निश्चित हो कर भोजन किया। उसे सवा नौ बजे की बस पकड़ने की भी चिन्ता नहीं थी। अपनी साइकिल पर दफ्तर जाना था। भोजन के पश्चात वह नई साइकिल को गर्द से बचाता हुआ बस के अड्डे की ओर गया कि वहां की प्रतीक्षा में खड़े लोग उस की साइकिल देख लें।

बस के अड्डे पर तख्तों की बनी हुई एक अकेली पान-सिगरेट की दूकान है। देवीलाल को पान की आदत नहीं। कभी-कभार ही खा लेता है परन्तु बस के किराये के तेरह आने बने थे तो एक आने के दो पान खरीद लेना कोई बड़ी बात न थी।

देवीलाल का पड़ोसी और उसी दफ्तर में काम करने वाला बंसीलाल पहली बस में जगह न पाने से अड्डे पर खड़ा था। देवीलाल ने उसे संबोधन किया—"बंसीलाल पान खाओगे?" और उस ने पनवाड़ी को दो पान लगाने के लिये कह दिया।

बंसीलाल सेक्शन के असिस्टेंट हेडक्लर्क सावनमल की शिकायत करने लगा। देवीलाल भी सावनमल से खिन्न था। देवीलाल ने साइकिल सावधानी

से दूकान की काठ की दीवार से टिका दी थी। वह वंसीलाल की बात का समर्थन कर उत्साह से इसमें योग देने लगा।

पनवाड़ी अभी देवीलाल को पान न दे पाया था कि वस आ गई। देवीलाल भी अपने तीन वरस के प्रतिदिन के अभ्यास से सतर्क हो गया। उस ने जल्दी से हाथ वढ़ा कर पान लिये। एक पान वंसीलाल को देकर दूसरा मुंह में रखते हुए और वंसीलाल का समर्थन करते हुए जल्दी-जल्दी में वह उस के साथ ही वस पर कूद गया।

वस करीव तीस गज चल चुकी थी तव देवीलाल को अपनी साइकिल की याद आई। "रोको! रोको?" वह चिल्ला उठा।

दूसरे लोग उस की मूर्खता पर हंस दिये।

कंडक्टर रुखाई से वोला—"सौ कदम पर अगला स्टाप है, वहाँ उतर जाना। वस नहीं रुकेगी।"

देवीलाल की आँखें मुंद गई। मुंह में भरे पान से गला घुट रहा था। उस ने तुरन्त देवी का स्मरण किया—"भगवती, मेरी साइकिल रखना।" उस ने मन ही मन सवा रुपये के प्रसाद की मनौती मान ली।

वस के अगले स्टाप पर देवीलाल सब से पहले उतर जाने की उतावली से गिरते-गिरते वचा। धड़कते हुए हृदय से सरपट दौड़ता हुआ वह पिछले स्टाप की ओर आया। चमकती हुई साइकिल दूर से दिखाई दे गई, तव भी वह दौड़ता ही रहा। साइकिल का हेंडल दोनों हाथों में मजवूती से पकड़ कर ही उसने साँस ली।

पनवाड़ी ने और आस-पास खड़े लोगों ने उस के भाग्य की सराहना की दिल्ली में ताला लगी पुरानी साइकिल तक आँख झपकते ही उड़ जाती वहाँ विना ताला लगी नई साईकिल लौट कर मिल गई, यह हलाल के पैसे के प्रभाव और भगवान की विशेष कृपा के विना कैसे हो सकता था।

सभी लोगों ने कहा—जिस पर उस की कृपा है, उसे आँच नहीं आ सकती। सव उस की लीला है। देवीलाल को भी विश्वास था कि यह चम-त्कार भगवती की पूर्ण कृपा का ही परिणाम था।

देवीलाल अपनी नई साइकिल पर सवार हो कर सेक्रेटेरियट की ओर फर्लांग भर ही वढ़ा था कि विचार आया कि देवी के प्रति मनौती मानी तो उसे इसी क्षण पूरा भी कर देना चाहिये। इस असाधारण कृपा के

देवी के चरणों में प्रणाम करने में विलम्ब क्यों करे ? अपनी साइकिल पर सवार है तो मील भर के चक्कर में अन्तर क्या पड़ता है। वह तीस हजारी की ओर घूम गया।

देवीलाल ने मन्दिर के समीप की दूकान से सवा रुपये का प्रसाद खरीद कर एक आने के फूल और पांच पैसे नकद भी टोकड़ी में रखे। केवल देवी के चरणों में प्रसाद रखकर भक्ति-भाव से प्रणाम ही करना था। इस काम में आधा मिनिट भी नहीं लगता। देवीलाल ने साइकिल निःशंक मन्दिर के द्वार के साथ टिकाकर रख दी। जूते उतार कर वह भीतर चला गया।

देवीलाल आधे मिनिट में लौट भी आया। जूते पाँव में फँसाकर उसने साइकिल की ओर देखा परन्तु साइकिल नहीं थी।

देवीलाल जूते के फीते बाँधे बिना ही चिल्ला उठा—"मेरी साइकिल ! मेरी साइकिल !"

वह बौखला कर मन्दिर के सामने की सड़क पर कुछ दूर दाहिनी ओर दौड़ा फिर पलटकर बाईं ओर दौड़ा और कुछ कदम मन्दिर के बगल की गली में भी गया। आंसू भरी आँखों से गिड़गिड़ाते हुए उस ने आस-पास की दुकानों में पूछा—मेरी नई साइकिल यहाँ रखी थी। केवल प्रणाम करने आधे मिनिट के लिए मन्दिर में गया था। किसी को ले जाते देखा है ?"

उत्तर में देवीलाल को विडम्बना और दुत्कार ही मिली। किसी ने कहा—"तेरे बाप के नौकर हैं ? अपने काम से फुर्सत नहीं। इस की साइकिल की रखवाली करें।" किसी ने इस से भी रूखी बात कही। और किसी ने सहानुभूति से पुलिस चौकी पर जाकर शिकायत करने के लिये कहा।

देवीलाल साइकिल पा जाने की आशा नहीं छोड़ देना चाहता था। वह बहुत जोर से सरपट एक मील तक सड़क पर साइकिल खोजने के लिये दौड़ता चला गया और फिर सांस फूल जाने पर धीमे-धीमे लौटा। उस का बुरा हाल था। हृदय में गले तक रोना भरा था और सिर चकरा रहा था।

देवीलाल सरकार से न्याय की आशा में पुलिस चौकी पर रपट लिखाने पहुँचा। दफ्तर के साथी बाबू लोगों को साइकिल के मूल्य का प्रमाण देने के लिये साइकिल की रसीद जेब में ही थी इसलिये साइकिल का नम्बर बताने में कठिनाई नहीं हुई। चौकी के मुंशी ने साइकिल में ताला न लगाने की बेपरवाही के लिये और साइकिल चोरों को प्रोत्साहित करने के लिये उसे ही फटकारा।

मुंशी जी [illegible] तब उसके आवश्यक काम में व्यस्त रहे, फिर मजीद की कलमदान में रखा ताला लगाया और [illegible] देवीलाल को रुक्का लिखकर छुट्टी दी।

पुलिस चौकी में लिखवा कर दफ्तर आने की सामर्थ्य देवीलाल में शेष न थी। वह भारी कदमों से घर लौट गया।

दरवाजे पर आहट सुनकर कमला ने किवाड़ खोले। देवीलाल का चेहरा बहुत उतरा हुआ देखकर उस का दिल धक से रह गया।

"क्या हुआ ?" कमला ने सांस रोक कर पूछा।

देवीलाल फिर लड़खड़ाते खाट पर बैठ गया और आंसू पोंछते-पोंछते साइकिल पान की दुकान पर भूल कर फिर आने और देवी के यहाँ मनौती करने जाने पर साइकिल चोरी हो जाने की बात सुना दी।

कमला इस चोट से इस तरह रो पड़ी कि आस-पास की कोठरियों और ऊपर की मंजिल की स्त्रियाँ आ पहुँचीं। सभी ने समझा देवीलाल को दफ्तर में शहर-गाँव से कोई मृत्यु हो जाने का समाचार मिला है। वही समाचार लेकर वह घर आया है। सब ने उन्हें सहानुभूति से घेर लिया।

कमला ने साइकिल के लिये गहना बेचने और घर की सब पूंजी लगा देने और साइकिल एक ही दिन में चोरी हो जाने की बात रो-रो कर सुनाई तो सहानुभूति के प्रदर्शन में कुछ कमी तो जरूर आई परन्तु पड़ोसिनें उसे दिलासा भी देती रहीं।

कमला बराबर रोये जा रही थी और देवी की निर्दयता की शिकायतें करके सवा रुपये का प्रसाद ले कर धोखा दे देने के लिए देवी को कोस रही थी।

संध्या समय दफ्तरों से बाबू लोग भी आ गये तो साइकिल चोरी जाने की चर्चा एक बार फिर उठी। देवीलाल की आंखों से आंसू झरने लगे। कमला फिर सवा रुपये का प्रसाद ले कर धोखा देने के लिये देवी की निन्दा करने लगी।

पास-पड़ोस में सब हिन्दू भाई ही रहते हैं। पहले तो लोग देवीलाल और कमला के दुखी हो कर देवी पर लांछन लगाने की मूर्खता पर मुस्कराये परंतु धार्मिक लोग देवी-देवता की निन्दा सुनना भी पाप समझते हैं। लोगों को देवीलाल और कमला पर क्रोध आने लगा।

चौधरी रामभजदत्त को आगे बढ़ कर उन्हें डांटना पड़ा—"तुम लोग

चुप होते हो या तुम्हारा मुह बन्द किया जाये। मुहल्ले पर देवी-देवता की निन्दा का पाप चढ़ा रहे हो! क्या बचपन है! जगतमाता, संसार की स्वा-मिनी भवानी तुम्हारे सवा-रुपये का लोभ करेगी? यह सब संसार-मात्र उसी की लीला है। इस में सब कुछ हुआ करता है।....

देवीलाल और कमला 'देवी की लीला' के असहाय पात्र बन जाने की विवशता में मुख पर कपड़ा रख कर चुप हो गये।

गौ माता

तिवारी जी होमियोपैथ डाक्टर हैं। हम दोनों लखनऊ में बरसों से पड़ोसी हैं। मैं [illegible] बार [illegible] आई [illegible] के काम आये हैं। हमारे और उन के परिवार में भी आना-जाना रहा है पर कुछ ही [illegible] चुनाव का। पिछले चुनाव में डाक्टर महाशय [illegible] का समर्थन कर रहे थे और हम कांग्रेस का। इस मतभेद से मन कुछ फट गये थे।

हमारा ख्याल था कि डाक्टर साम्प्रदायिकता की आड़ लेकर जनप्रिय बनना चाहते हैं। उन का ख्याल था कि हम सरकार के बड़े सहायक बनकर अदालत और अफसरों में अपना प्रभाव बढ़ा लेना चाहते हैं। नीयतों पर सन्देह हो गया था पर जानकी के मामले में फिर सहयोग हो गया।

जानकी हमारे मुहल्ले के कामता की विधवा है। बेचारी के दो छोटे-छोटे लड़के हैं परन्तु निर्वाह का साधन कुछ नहीं है। ऐसे में लड़कों के बाप की मृत्यु हो जाने पर कोठरी का किराया देना भी कठिन हो गया था।

मकान मालिक चोखेलाल किराया उगाहने के लिये बेचारी विधवा जानकी का मालमता नीलाम करवा लेना चाहता था। असली मतलब वही था जो साधारणतः मकान मालिकों का होता है। कामता ने कई बरस पहले तीन रुपया माहवार पर कोठरी ली थी। चोखेलाल अब उस के दस रुपया माहवार पा सकता था इसलिये कोठरी खाली करवा लेना चाहता था। डाक्टर तिवारी ने और हमने भी बीच-बचाव किया। इसी से हम दोनों फिर समीप आ गये।

कामता हरदोई शहर का था। आदमी सीधा था। अपने तिकड़मी और मुंहज़ोर छोटे भाई से आतंकित होकर घर की दूकान और मकान का हिस्सा छोड़कर लखनऊ आ गया था पर बेचारी जानकी के भाग्य में सुख जो नहीं बदा था।

जानकी बच्चों को लेकर अपने हरदोई के मकान में रहने के लिये गई तो उस के देवर ने घुसने नहीं दिया। लौटकर उस ने अपनी विपदा सुनाई। उस की ओर से हरदोई की जिला अदालत में दरखास्त दी गई। तारीख के दिन हमें हरदोई जाना था। गवाहों का प्रबन्ध भी हमें ही करना था। हरदोई में अपना परिचय न था। प्रश्न था, वहाँ ठहरेंगे कहाँ ?

डाक्टर तिवारी ने कहा—"ठहरने के लिये जगह की फिक्र मत करो। हरदोई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन बृजनन्दन हमारे सहपाठी थे। उन का नाम तो सुना होगा। बृजनन्दन मामूली आदमी नहीं हैं। अखबारों में उन की कितनी चर्चा रहती है, तुम्हें मालूम ही नहीं ?"

"ओ भैया !" डाक्टर तिवारी ने अपने बड़े पुत्र को पुकारा और पिछले सप्ताह का 'सद्धर्म', महासभा का प्रांतीय पत्र, ढूंढ़ कर देने के लिये कहा और बताने लगे:—

"बृजनन्दन बहुत दबंग आदमी है भाई ! उस ने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन के अधिकार से आज्ञा दे दी है कि गौओं को कांजी-हौज में बन्द नहीं किया जा सकता; समझे ! इस जमाने में इतनी धर्म-भावना और साहस क्या मामूली बात है ?"

डाक्टर ने उत्साह के स्वर में कहा—"भाई, हम तो ऐसे आदमी को मानते हैं। गाय को माता कहते हैं तो उस के लिये इतना आदर तो होना ही चाहिये। गाय हमारा पालन करती है, जन्म से मृत्यु तक। हमारा देश कृषि-प्रधान है और गौ-प्रधान है। हमारा देश तो गाय की छाया में ही पलता है इसीलिये हमारे यहां गौ के गोबर तक का महात्म्य है। हमारे धर्म-शास्त्र में सभी धर्म-कार्य गौ के गोबर से पवित्र किये स्थान में किये जाने की विधि है। शास्त्र का तो कहना है कि धरती गाय के सींग पर टिकी है और गाय के खुर में सब तीर्थ समाये हैं....।"

डाक्टर तिवारी चिकित्सा के सम्बन्ध में गाय के गोबर की वैज्ञानिक शक्तियों के विषय में बहुत कुछ बताते रहे। मैं यही सोच रहा था, जिस किसान का खेत गाय चर जायगी उसे गोबर की वैज्ञानिक शक्तियों से क्या सन्तोष होगा और यदि खेत चरने के अपराध में गधे को कांजी-हौज में बन्द करना, या उस के मालिक को दण्ड दिया जाना न्याय है तो गाय के भी वही अपराध करने पर गाय को या गाय के मालिक को न्याय से दण्ड क्यों नहीं दिया जाना चाहिए ?

ठाकुर साहब ने पहला गिलास हमारी ओर ही बढाया। हम बचपन में, अपने सम्बन्ध की एक भद्र स्त्री को धोखे से खिला दी गई भाँग के कारण, स्त्री की ऐसी दुरावस्था देख चुके है कि वह स्मृति अमिट हो गई है। भाँग के नशे का आतंक स्थायी रूप से हमारे मन पर छा गया है। हमने बहुत विनय से क्षमा चाही।

ठाकुर साहब ने लखनऊ से आने वाले अपने मित्र के मित्र अतिथि के लिये बहुत उत्साह से गुलाब और बादाम डलवा कर भाँग छनवाई थी। निराशा से बोले—"अरे, बिलकुल ही नहीं लीजियेगा? यह तो शिवजी की बूटी है। आप के लिये हल्की ही छनवाई है।"

ठाकुर साहब ने एक और गिलास दूध मगवा कर, बरफ मिले दूध में कुछ भाँग मिलवाकर पीने का आग्रह किया। यह आग्रह स्वीकार करना ही पड़ा।

ठाकुर साहब ने स्वयं एक गोली भाँग की निगल कर गहरी छनी भांग के दो गिलास पी लिये।

ठाकुर साहब की सतुष्ट मुद्रा से उचित अवसर का अनुमान कर हमने जानकी के प्रति उसके देवर के अन्याय की बात सुना डाली और ठाकुर साहब के सम्बन्ध में और कोई दूसरी बात मालूम न होने के कारण हिचकते-हिचकते जिले में गौओं को कांजी-हौजों के आतक से मुक्त कर देने के उनके साहस की चर्चा करने लगे।

ठाकुर साहब की आखें लाल हो चुकी थीं और चेहरे पर कुछ भारीपन आ गया था। सुविधा के लिये मोढ़े पर खिसक कर बोले—"अरे वकील साहब, उस मामले की बात क्या कह रहे है? आप शहरों में रहने वाले गांव की हालत क्या जानें, गांव में गाय की क्या दुर्दशा हो गई है? बोर्ड की मीटिंग में लोगों ने हमारा बहुत विरोध किया।

वकील साहब, लोग कितने कमीने हो गये है? धर्म तो किसी के मन में रह ही नहीं गया। अंगरेजी राज में तो कसाई देहात से सब बूढ़े और खांसर ढोरों को छावनियों में हांक ले जाते थे तो मुसीबत टल जाती थी। अब बेकाम ढोर लोगों के गले की मुसीबत बन गये हैं। उन्हें दरवाजे पर बांधकर कोई खिलाना नहीं चाहता। आप ही बताइये, कोई खिला भी कैसे सकता है? चारा ही कहाँ मिलता है। ढेड़-चमार को बेदाम ही दे डालो तो वह भी हाँककर ले जाने के लिये तैयार नहीं। ढोर के मर जाने से पहले सात-छः

महीने उसे कौन खिलाये ? भगवान समझे‥‥"वकील साहब, सालों ने क्या तरकीब निकाली ? अपनी भूखी, बूढ़ी गैया को दरवाजे से हाँक देते थे। भूखी गैया किसी के खेत में ही तो जायगी। गैया जिस के खेत चरेगी वह एक बार गम खायगा, दो बार खायगा। लोग बूढ़ी गौओं को कांजी-हौज में पहुँचाने लगे। पहले गोवध पर रोक नहीं थी तो लोग बूढ़ी गाय को भी अठन्नी-रुपया जुर्माना देकर ले ही जाते थे कि पन्द्रह में नहीं दस में बेच देंगे। अब बूढ़ी गाय ले कौन जाये ? सो गैया कांजी-हौज में पन्द्रह दिन से खड़ी है लेकिन छुड़ाने की फ़िक्र किसी को नहीं। मालिक ने तो समझ लिया, गले का पाप कटा।

"कांजी-हौज में चौकीदार गैया को क्या खिलाता है सो तो आप जानते हैं पर बाड़े में जानवर है तो उसके चारे का बिल तो बनेगा ही। आप समझते हैं सरकारी हिसाब तो हिसाब ! आप जानते हैं कि पन्द्रह दिन कोई छुड़ाने नहीं आये तो गैया को नीलाम कर उस के चारे का खर्च चुका लेने का हुक्म है। बूढ़ी, पन्द्रह दिन की भूखी गैया को नीलाम करो तो कोई अठन्नी की बोली देने के लिए तैयार नहीं। यह रह गयी है गौमाता की इज्जत और कदर !" ठाकुर साहब उत्तेजना से हाथ उठाकर बोले और कहते गये—

"जितनी बार गैया कांजी-हौज में आये सरकारी हिसाब में नौ-दस रुपये का घाटा। साहब, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड जिले भर की बूढ़ी गौओं को कहाँ तक पाले ! आप जानते हैं, गैया तो एक दिन बूढ़ी होगी और फिर आप जानते हैं, किसान की औकात क्या ? कितनी गैया पालेगा ? बूढ़े गाय-बैल थान पर रहेंगे तो उसके जवान गाय-बैल भी आधे पेट रहेंगे। जवान गैया भी भूखी रहेगी तो क्या दूध देगी ?

"वकील साहब, लोगों के मन में धर्म का तो नाम नहीं रह गया। बेईमान कहीं के। आज तो लोग देहात में गाय के नाम से डरते हैं। साहब लोग कहने लगे हैं कि गौ-वध क्या बन्द हो गया और किसान-वध शुरू हो गया। गाय हौआ बन गयी ! गाय तो कोई खरीदना ही नहीं चाहता। देहात में सेर भर दूध की बकरी के दाम साठ हैं तो गाय के तीस रुपये !‥‥‥यह रह गयी है गाय की इज्जत ! क्या कहें हम इन लोगों को ? बकरी ने तीन-चार बरस दूध दिया। दूध से उतर जाये तो तब भी कोई चमार या मुसलमान खाल और मांस के लिए उसे खरीद ही लेगा। बूढ़ी गैया का क्या हो ? लोगों में धर्म तो रह नहीं गया। हम ने कहा सालो, तुम्हें हम ठीक करेंगे !‥‥हमने आर्डर कर

दिया कि आइन्दा, कांजी-हौज़ में गाय तो ही नहीं जायगी।"

चेयरमैन साहब मोढ़े पर कुछ और खिसक गये। आँखों में भांग का प्रभाव भी कुछ और अधिक दिखायी दे रहा था। लोगों में धर्म के ह्रास के प्रति उनका क्रोध और गौ-रक्षा का उत्साह बढ़ता जा रहा था। वे गाली-गलौज पर आ गये—"सालो, धरती तुम्हारे ही लिये है, गौ माता के लिये नहीं है? सालो धरती माता पर गौ माता खुली विचरेंगी! तुम में धर्म नहीं रहा तो तुम मर जाओ.......।"

सोच रहे थे, हमने बूटी हल्की ही ली थी परन्तु उसका भी तो कुछ प्रभाव था ही। हमें दिखाई देने लगा—

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का चुनाव हो रहा है। पोलिंग अफसर सब खोड़ हैं और वोट देने के लिये सब गाय-बैल चले आ रहे हैं.......।

महाराजा का इलाज

उत्तर-प्रदेश की जागीरों और रियासतों में मोहाना की रियासत का बहुत नाम था। रियासत की प्रतिष्ठा के अनुरूप ही महाराजा साहब मोहाना की बीमारी की भी प्रसिद्धि हो गई थी।

जिला अदालत की बार में, जिला मैजिस्ट्रेट के यहाँ और लखनऊ के गवर्नमेंट हाउस तक में महाराज की बीमारी की चर्चा थी। युद्ध-काल में गवर्नर के यहाँ से युद्ध-कोष में चन्दा देने के लिये पत्र आया था तो महाराज की ओर से पच्चीस हजार रुपये के चेक के साथ उन के सेक्रेटरी ने एक पत्र में महाराज की असाध्य बीमारी की चर्चा कर उन की ओर से खेद प्रकट किया था कि इस रोग के कारण वे सरकार की उचित सेवा के अवसर से वंचित रह गये हैं।

गवर्नर के सेक्रेटरी ने महाराज द्वारा भेंट की गई धन-राशि के लिये धन्यवाद देकर गवर्नर की ओर से महाराज की बीमारी के लिये चिंता और सहानुभूति भी प्रकट की थी। वह पत्र कांच लगे चौखटे में मढ़वाकर महाराज के ड्राइंग-रूम में लगा दिया गया था। ऐसे ही एक पोस्टकार्ड महात्मा गांधी के हस्ताक्षरों में और एक पत्र महामना मदनमोहन मालवीय का भी महाराज की बीमारी के प्रति चिंता और सहानुभूति का विशेष अतिथियों को दिखाया जाता था।

महाराज को साधारण लोग-बाग की तरह कोई साधारण बीमारी नहीं थी। देश और विदेश से आये हुये बड़े से बड़े डाक्टर भी उन की बीमारी का निदान और उपचार करने में मुंह की खा गये थे। लोगों का विचार था कि चिकित्सा-शास्त्र के इतिहास में ऐसा रोग अब तक देखा-सुना नहीं गया। ऐसे राज-रोग को कोई साधारण आदमी झेल भी कैसे सकता था।

महाराज प्रति वर्ष गर्मियों में अपनी मसूरी की कोठी में जाकर रहते थे।

कोठी को अपनी रिक्शायें दीं। रिक्शा खींचने वाले कुलियों की नीली वर्दियों पर मोहाना स्टेट के पीतल के चमचमाते बिल्ले लगे रहते थे। महाराज जब कभी कोठी से रिक्शा पर बाहर निकलते तो रिक्शा को खींचते चार कुलियों के साथ-साथ, बदली के लिये दूसरे चार कुली भी साथ-साथ दौड़ते चलते। सावधानी के लिये महाराज के निजी डाक्टर घोड़े पर सवार रिक्शा के साथ-साथ रहते थे।

सितम्बर के महीने में महाराज के पहाड़ से नीचे अपनी रियासत में या लखनऊ की कोठी पर लौटने से पहले मंसूरी में डाक्टरों के मेले की धूम मच जाती। मंसूरी के सब बड़े-बड़े होटलों में कुछ दिन पेश्तर ही कमरों के बहुत से सूट या कमरे तीन दिन के लिये सुरक्षित करवा लिये जाते। तीन-चार बड़े-बड़े बंगले भी किराये पर ले लिये जाते। इसी तरह डाक्टरों के लिये रिक्शायें और बढ़िया घोड़े भी सुरक्षित कर लिये जाते। लोग-बाग न होटलों में स्थान पा सकते न उन्हें सवारी मिल पाती। बात फैल जाती कि महाराज मोहाना को देखने के लिये देश भर से बड़े-बड़े डाक्टर आ रहे हैं।

यह सब डाक्टर महाराज के शरीर की परीक्षा और उन की बीमारी का निदान करने के लिये बुलाये जाते थे। सब डाक्टर बारी-बारी से महाराज की परीक्षा कर चुकते तो महाराज की बीमारी के निदान का निश्चय करने के लिये डाक्टरों का एक सम्मेलन होता और फिर डाक्टरों की सम्मिलित राय से महाराज की बीमारी पर एक बुलेटिन प्रकाशित किया जाता। सब डाक्टर अपनी-अपनी फीस, आने-जाने का किराया और आतिथ्य पाकर लौट जाते परन्तु महाराजा के स्वास्थ्य में कोई सुधार न होता। न महाराज के हृदय और सिर की पीड़ा में अन्तर आता और न उन के जुड़ गये घुटनों में किसी प्रकार की गति आ पाती। नौ वर्ष से यह क्रम इसी प्रकार चल रहा था।

उस वर्ष बम्बई मेडिकल कालेज के प्रिंसिपल डाक्टर कोराल को भी महाराज मोहाना के रोग के निदान के लिये मसूरी में आयोजित डाक्टर-सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये निमंत्रण भेजा गया था। डाक्टर कोराल तीन वर्ष पूर्व भी एक बार इस सम्मेलन में सम्मिलित होकर अपनी फीस और आतिथ्य स्वीकार कर आये थे। उस वर्ष भी इस प्रसंग में मंसूरी की सैर कर आने में उन्हें आपत्ति न होती परन्तु भारत सरकार ने डाक्टर कोराल को

अमरीका जाने वाले डाक्टरों के शिष्ट-मण्डल में नियुक्त कर दिया था। शिष्ट-मण्डल महाराज मोहाना के निमंत्रण की तिथि से पूर्व ही वम्वई से जा रहा था।

प्राय: एक वर्ष पूर्व ही डाक्टर संघटिया वियाना में काफी समय अनुसंधान का काम कर वम्वई मेडिकल कालेज में लौटे थे। डाक्टर संघटिया अनेक रोगों का इलाज 'साइकोसोमेटिक' (मानसिक उपचार) प्रणाली के माध्यम से कर रहे थे।

डाक्टर कोराल ने महाराज मोहाना के निमंत्रण के उत्तर में सुझाव दिया कि डाक्टर संघटिया के नये अनुसंधान का प्रयोग महाराज के उपचार के लिये करके परिणाम देखा जाना चाहिये।

महाराज के यहाँ भी वियाना से नये डाक्टर के आने की वात से उत्साह अनुभव किया गया और डाक्टर संघटिया के नाम निमंत्रण भेज दिया गया।

डाक्टर संघटिया निश्चित समय पर वम्वई से मंसूरी पहुँचे। उन्हें एक वहुत वड़े होटल में सुरक्षित स्थान पर टिका दिया गया। दूसरे दिन महाराज की कोठी से एक घुड़सवार जाकर उन्हें रिक्शा पर सवार कराकर कोठी में ले गया। डाक्टर संघटिया ने देखा कि उस समय कोठी के ड्राइंग-रूम में एक अमरीकन और एक भारतीय डाक्टर भी मौजूद थे।

महाराज मोहाना के सेक्रेटरी ने विनय से डाक्टर संघटिया को सूचना दी कि उन से पहले आये डाक्टर महाराज की परीक्षा कर लें तो वे भी महाराज की परीक्षा करने की कृपा करेंगे।

डाक्टर संघटिया ने वहुत ध्यान से दो घण्टे से अधिक समय तक रोगी की परीक्षा की। पिछले वर्षों में महाराज के रोग के निदान के सम्वन्ध में डाक्टरों के वुलेटिन देखे।

दो दिन और तीसरे दिन मध्याह्न से पूर्व तक निमंत्रित डाक्टर एक-एक करके महाराज की परीक्षा करते रहे। सभी डाक्टरों को महाराज के अंग-प्रत्यंग के एक्सरे फोटो के एलवम भेंट किये गये थे।

तीसरे दिन दोपहर वाद वत्तीसों डाक्टरों की एक सभा का आयोजन किया गया था।

कोठी के वड़े हाल में मेज़-कुर्सियों के वत्तीस जोड़े अण्डाकार लगाये गये थे, जैसे विशेषज्ञों की किसी कान्फ्रेंस के लिये प्रवन्ध किया गया हो। प्रत्येक मेज़ पर एक डाक्टर का नाम लिखा था और मेज़ पर उस डाक्टर के नाम

और उपाधि सहित छपे हुये कागज मौजूद थे। सभी मेज़ों पर बहुत कीमती फ़ाउण्टेनपेन और पेंसिल के सेट केसों में सजे हुये थे। कलमों, पेंसिलों और केसों पर भी खुदा हुआ था—'महाराज मोहाना की ओर से भेंट।' डाक्टरों के बैठने का क्रम अंग्रेजी वर्णमाला में डाक्टरों के नाम के पहले अक्षर के क्रम के अनुसार था।

डाक्टरों से अनुरोध किया गया कि वे अपनी परीक्षा और निदान के सम्बन्ध में परस्पर-विचार कर अपना मंतव्य लिख लें। इस के पश्चात महा-राज सभा में उपस्थित होकर डाक्टरों की राय सुनेंगे।

डाक्टरों के सत्कार के लिये चाय-काफ़ी, ह्विस्की-जिन, फलों के रस और हल्के-फुल्के आहार का भी प्रबन्ध था। डाक्टर लोग प्रायः एक घण्टे तक चाय, काफ़ी, ह्विस्की, जिन की चुस्कियां लेते आपस में बातचीत करते अपने मंतव्य लिखते रहें।

साढ़े-चार बजे महाराजा साहब को एक पहिये लगी आराम कुर्सी पर हाल में लाया गया। महाराज के चेहरे पर रोगी की उदासी और दयनीय चिंता नहीं, असाधारण-दुर्बोध रोग के बोझ को उठाने का गर्व और गम्भीरता छाई हुई थी।

महाराज के दाईं ओर से डाक्टरों ने क्रमशः परीक्षा और निदान के सम्बन्ध में अपनी-अपनी राय ज़ाहिर करनी और उसके अनुकूल उपचार के सुझाव देने आरम्भ किये।

दो डाक्टरों ने महाराज को उपचार के लिये न्यूयार्क जाकर विद्युत चिकि-त्सा करवाने की राय दी। एक डाक्टर का विचार था कि महाराज को एक वर्ष तक चेकोस्लोवाकिया में 'कार्लोविवारी' के चश्मे में स्नान करना चाहिये। सोवियत का भ्रमण करके आये एक डाक्टर का सुझाव था कि महाराज को काले समुद्र के किनारे 'सोची' में 'मात्सयस्ता' स्रोत के जल से अपना इलाज करवाना चाहिये।

महाराज गम्भीरता से मौन बने डाक्टरों की राय सुन रहे थे।

सत्ताइसवें नम्बर पर डाक्टर सपटिया से अपना विचार प्रकट करने का अनुरोध किया गया।

डाक्टर सपटिया उठकर बोले—"महाराज के शरीर की परीक्षा और रोग के इतिहास के आधार पर मेरा विचार है कि महाराज का यह रोग

साधारण शारीरिक उपचार द्वारा दूर होना सम्भव नहीं है......।"

महाराज ने नये, युवा डाक्टर की विज्ञता के समर्थन में एक गहरा श्वास लिया, उन की गर्दन जरा और ऊंची हो गई। महाराज ध्यान से नये डाक्टर की बात सुनने लगे।

डाक्टर संघटिया बोले—"मुझे इस प्रकार के एक रोगी का अनुभव है। कई वर्ष से बम्बई मेडिकल कालेज के एक मेहतर को ठीक इसी प्रकार घुटने जुड़ जाने और हृदय तथा सिर की पीड़ा का दुस्साध्य रोग है......"

"चुप बत्तमीज !"

सब डाक्टरों ने सुना और वे विस्मय से देख रहे थे कि महाराज पहिये लगी आराम कुर्सी से उठ कर खड़े हो गये थे।

महाराज के बरसों से जुड़े घुटने कांप रहे थे और उन के होंठ फड़फड़ा रहे थे, आँखें सुर्ख थीं।

"निकाल दो बाहर बदजात को ! हमको मेहतर से मिलाता है......। निकाल दो बदजात को, डाक्टर बना है।" महाराज क्रोध से थुथलाते हुये चीख रहे थे।

महाराज सेवकों द्वारा हाल से कुर्सी पर ले जाये जाने की परवाह न कर कांपते हुये पावों से हाल से बाहर चले गये।

दूसरे डाक्टर पहले विस्मित रह गये। फिर उन्हें अपने सम्मानित व्यवसाय के अपमान पर क्रोध आया और साथ ही उन के होंठों पर मुस्कान भी फिर गई।

डाक्टर संघटिया ने सब से अधिक मुस्कराकर कहा—"खैर जो हो, बीमारी का इलाज तो हो गया......।"*

---

*कहानी में स्थानों और पात्रों के नाम कल्पित हैं।

मूर्ख क्रोध

सुधू स्कूल की बस पर चढ़ रही थी। उसका जूता पायदान से फिसल गया। सड़क पर घुटने के बल गिर पड़ी। ज़रा-सी खरोंच आ गई थी। नौकर ने भीतर आकर मुझे कहा। सोचा, टिंचर या मर्क्योक्रोम लगा दूं।

बच्चों को ऐसी चोटें लगती ही रहती हैं इसलिये एक-आध दवाई घर पर रखती हूँ। जब तक बाहर आऊँ, बस जा चुकी थी। बच्चे ऐसी चोटों की परवाह भी क्या करते हैं।

सुधू चौथे पहर स्कूल से लौटी तो चोट की बात भी भूल गई थी। उस ने दूध या नाश्ता लेने की अनिच्छा प्रकट की। मुन्ना उस से खेलने के लिये आया तो उसे भी हटा दिया। कहने लगी—"मम्मी हमें लिटा दो।"

मुझे उस का बदन गरम नहीं लगा। सोचा, कहीं ठंड-वंड लगी होगी या पेट खराब होगा। उबान कुछ कोटिड (मैली) थी। मैंने उसे लिटा दिया कि कुछ देर आराम करेगी तो ठीक हो जायगी। नौकर को दोसांदा बना देने के लिये भी कह दिया।

'ये' साढ़े पांच बजे आये तो मैंने बताया कि सुधू कुछ सुस्त है। तब मुझे सड़क पर चोट लगने की भी बात याद आई। घुटने पर देखा तो खून की बूंदें सी छलक कर सूख गई थीं। इन्होंने चोट को बहुत ध्यान से देखकर कुछ चिंता के स्वर में पूछा—"कब, किस समय चोट लगी थी?"

मैंने पूछा—"क्यों?" और बताया, "सुबह साढ़े-नौ बजे, स्कूल जाते समय गोपाल ने बताया था। मैं जब तक बाहर गई बस चली गई थी।"

सोच कर बोले—"सड़क पर लगी चोट अच्छी नहीं होती। एहतियातन उसी समय इंजेक्शन लगवा देना चाहिये था।"

इन्होंने सुधू से पूछा—"बेटी, बाज़ार चलोगी हमारे साथ?"

सुधू ने अँगड़ाई लेकर कहा—"पापा जी, मन नहीं करता।" और मुंह ढाँक कर लेटी रही।

इन्होंने तुरन्त चाय पी और सुधू को गोद में लेकर रिक्शा पर डाक्टर के यहाँ ले गये। पौन घण्टे बाद लौटे तो रिक्शा को रोककर मुझ से बोले—"दो साफ चादरें दे दो। डाक्टर साहब ने हस्पताल में फोन करके सुधू को वहाँ दाखिल कर लेने के लिये कह दिया है।"

मेरा कलेजा धड़क गया, पूछा—"क्यों, क्या है इसे ? हस्पताल ले जाने की क्या जरूरत है। सच बताओ !"

'ये' बोले—"घबराने की कोई बात नहीं। वहाँ सब तरह के इलाज की सुविधा रहती है। जरूरत हो तो सब तरह के टेस्ट तुरन्त हो सकते हैं। बिना बुखार के इसे सुस्ती है, जाने क्या कारण हो !"

मैंने आग्रह किया—"रात भर तुम इसे कैसे सम्भालोगे। मुझे साथ ले चलो : मैं वहाँ रह जाऊँगी, मुन्ना को तो निर्मला भी रख लेगी।"

इन्होंने नहीं माना, बोले—"वाह, क्यों नहीं सम्भाल सकूंगा। यदि रात में 'चौक' या 'अमीनाबाद' से कोई इंजेक्शन ही लाना हुआ तो तुम क्या करोगी, मुझे तो कोई कठिनाई नहीं होगी, तुम कोई चिंता मत करो। चिंता तो इलाज में कमी रह जाने से होती है।"

मैंने कहा—"हाय क्या कह रहे हो ? ऐसी कोई बात है ?"

बोले—"नहीं भई, मैं तो संभावना की बात कर रहा हूँ।"

इन्होंने पड़ोसी सतीश के लिये पुछवाया।

निर्मला ने आकर कहा—"किसी काम से गये हैं, साढ़े सात-आठ तक आयेंगे।"

यह बोले—"अच्छा, अगर जल्दी आ जाये तो कहना, एक बार जरा हस्पताल आ जाय।"

सुधू इन की गोद में ऊँघ रही थी। उसे प्यार कर मैंने कहा—"बेटी, सुबह हस्पताल से जल्दी लौट आना।"

हाय, तब मुझे क्या मालूम था........

सतीश रात साढ़े नौ-दस के लगभग आये तो बोले—"खास जरूरत हो तो अभी हस्पताल हो आऊँ, नहीं तो कल इतवार है। सुबह तड़के ही साइकल पर चला जाऊँगा।"

सतीश इतवार, सुबह आठ ही बजे साइकिल पर हस्पताल चले गये।

मेरा मन हाथ से निकला जा रहा था, आँसू थमते ही न थे, हाथ-पाँव फूल रहे थे। मुन्ना बार-बार मुधू को पूछ रहा था। मेरे आँसू देखकर उस के होंठ लटक जाते थे इसलिये किसी तरह अपने आप को सम्भाले थी।

दस बजे सतीश अपनी माँ और निर्मला के साथ आये। तीनों की रोई हुई आँखें देखकर मेरी चीख निकल गई।

सतीश की माँ ने मुझे बाहों में ले लिया। निर्मला ने लपक कर मुन्ना को मेरी गोद से उठा लिया और भाग गई।

सतीश के आँसू बह गये। मैंने सिर पीट लिया। सतीश की माँ मुझे छाती से चिपका मेरे हाथ पकड़ रही थी।

सतीश अपने आँसू पोंछते हुये कह रहे थे—"भाभी, तुम वह दृश्य देख नहीं सकती थी। टिटेनस में ऐसा ही होता है। लड़की बेहोशी में बेतहाशा हाथ-पाँव पीट रही थी। शुक्ल जी सम्भाले रहे। उन का बड़ा जिगरा है परन्तु जब अन्त हो गया तो वे भी बेहोश हो गये। मैंने उन्हें सम्भाला।"

जब होश आया तो सतीश की माँ और दो-तीन पड़ोसिनें मेरे समीप बैठी थीं।

उन लोगों ने बताया कि 'ये' मुधू का शरीर लेकर टांगे पर जल्दी ही आ गये थे। इन्होंने कहा—मेरे होश में आने से पहले ही लड़की को ले जाना चाहिये। मैं लड़की का विकृत रूप न देख सकूं इसलिये सतीश और मुहल्ले के पाँच-सात आदमियों के साथ वे कभी के श्मशान की ओर जा चुके थे।

मैंने अपना मुंह नोच लिया, सिर पीट लिया। उस हृदय विदारक वेदना में मैं क्रोध की आग से जल उठी—क्यों मेरी बेटी को छीन ले गये। अन्त समय एक बार उस का मुंह भी मुझे न देखने दिया। मैं एक बार उसे गोद में ले लेती तो इन का क्या बिगड़ जाता।

"" ये हमेशा मेरे साथ ऐसा ही करते हैं। सदा धोखा देते हैं। अपने आप तो बेहोश हो गये। मेरा क्या दिल नहीं है। बेटी क्या इन्हीं की थी? मैंने ही तो पेट में रखकर पैदा की थी। ये कौन होते हैं मुझे उस का मुंह न देखने देने वाले।

"" पहले भी ऐसा ही किया था। नैनीताल में अपना सिर फट गया तो पता भी न दिया। लोगों ने बताया कि भाग्य ही था कि बच गये। मैंने पता

सब की इज़्ज़त

"शटप रौन ! बेवकूफ कहीं की" उत्तरा ने बहुत जोर से डाँटा।

रौन फर्श तक लटकते अपने कानों से उत्तरा के काले सैंडलों में बंधे गोरे-गोरे पाँवों को सहलाती हुई उसकी सफेद साड़ी के छोर के नीचे दुबक गई।

उत्तरा ने उल्लास से चमकती अपनी आँखें व्यास की आँखों में डाल कर रौन की धृष्टता के बदले अपना आदर प्रकट किया—"यह पागल तुम्हें देख कर जाने क्यों बावली हो जाती है ?"

व्यास ने हाथ में रूल की तरह लपेट कर थामी हुई पत्रिका समीप पड़ी नक्काशीदार गोलमेज पर रख दी। सोफ़ा पर बैठते हुए वह आह दबाकर बोला—"यह मेरे प्रति तुम्हारे घर की भावना को खूब समझती है। जानती हो, मैं चोरी से आया हूँ। कुत्ता चोर को सूँघ लेता है।"

उत्तरा ने आँखों में स्नेह की भर्त्सना लाकर व्यास को डाँटा—"वाह, चोरी से क्यों आये हो। सौ खुशामद कराकर पधारे हैं।"

सोफ़ा के साथ जाड़ी रखी हुई कुर्सी पर बैठते हुये उत्तरा बोली—"असल में इस बेवकूफ़ को आदत है कि हर पैदल आने वाले पर भौंकती है। कोई मोटर पर आये तो उछल कर उस की गोद में जा बैठेगी। डबलरोटी, दूध और फल वाले साइकिल पर आते हैं। उन पर दूर से गुर्रा कर रह जाती है। पोस्टमैन या दूसरे पैदल आने वालों को देख कर इतना भौंकेगी जैसे इसी का गला काटने आये हों।"

"यही तो कह रहा हूँ" व्यास ने कहा, "यह श्रेणी-भेद समझती है। रौन समझती है कि अरिस्टोक्रेट लोगों के यहाँ साधारण लोगों का क्या काम ? उन के आने से वातावरण खराब हो जाता है।"

"क्या ऊटपटाँग बक रहे हो ?" उत्तरा प्यार से झुँझलाई, "हमें नहीं अच्छी

लगती ऐसी बातें। तुम्हारे प्रभाव और प्रतिभा का यह लोग क्या मुकाबला करेंगे ? तुम्हारी कसम, 'लोक-सांस्कृतिक सम्मेलन' पर तुम्हारी परसों की टिप्पणियों की चर्चा सभी जगह है। क्या मखमल में लपेट-लपेट कर मारे हैं, मजा आ गया ! गम्भीरा कह रहा था, विद्रूप में तुम्हारा कोई सानी नहीं।"

व्यास ने उत्तरा की आँखों में आँखें गड़ाकर कहा—"सच बताऊँ ? टिप्पणियाँ लिखी इसीलिये थीं कि तुम्हें पसन्द आ जाएँ।"

"झूठे कहीं के !" गद्गद स्वर में उत्तरा ने विरोध किया और आँखें झुका लीं, "हमारी आपको क्या परवाह है। आपको तो दुनिया मानती है। आप तो व्यास मुनि हैं। वैसे ही यश फैल रहा है। अच्छा हाथ देखें आपका ?"

व्यास ने हाथ आगे बढ़ा दिया। उत्तरा ने व्यास का हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर ध्यान से देखा—"बाबारे, देखिये; यश की रेखा कितनी लम्बी और स्पष्ट है।" और फिर व्यास के हाथ को अपने दोनों हाथों में दबाये रही।

व्यास ने पूछा—"तुम्हारे भाइयों ने भी टिप्पणियाँ पढ़ीं ?"

"उन्हें ऐसी बातों से क्या मतलब ?" उत्तरा ने होंठ बिचका कर निरुत्साह से उत्तर दिया, "वे लोग तो जायदाद की बिक्री के और सरकारी ठेकों के नोटिस देखते हैं या फिर 'मिलिटरी-क्लब' 'टर्फ़-क्लब' के नोटिस या ऐसी पार्टियों की खबरें जहाँ मंत्रियों को जाना हो।"

"उन्हें यह मालूम है कि मैं कौन हूँ ?" कुछ चिन्ता से व्यास ने पूछा।

उत्तरा ने अपने हाथों में दबे व्यास के हाथ को सहलाते हुये उत्तर दिया "कुछ मालूम भी है परन्तु आपको ठीक से तो नहीं पहचानते।"

"क्या मालूम है ?" व्यास उत्सुकता से उत्तरा की ओर झुक गया।

"तुम्हारे साथ मुझे उन लोगों ने कई बार देखा है। तुम यहाँ भी कई बार आये हो। पूछा था कौन है ? मैंने बता दिया था बहुत प्रसिद्ध पत्रकार हैं। नाम भी बताया था।"

"तो फिर ?" व्यास उत्तरा की ओर कुछ और झुक गया।

"बड़े भाई ने मुँह बनाकर पूछा, पत्रकार ? अखबार-वखबार के दफ्तर में नौकर होगा, मुझे बुरा लगा। मैंने आगे बात ही नहीं की।"

निरुत्साहित व्यास की पीठ सोफ़े से लग गई। उसने चारों ओर सरसरी दृष्टि दौड़ा कर कहा—"यहाँ तुमने मुझे व्यर्थ बुलाया। मैं तुम्हारे ड्राइंग रूम में जँचता नहीं हूँ।" उसने अपनी ठोड़ी पर हाथ फेरा, "जल्दी में शेव भी

नहीं कर सका और यह मेरी मसली हुई बुशशर्ट और बिना प्रेस की हुई पेंट।"

उत्तरा स्नेह से उसकी ओर देख कर बोली—"लाल गुदड़ी में भी नहीं छिपते।"

"तुम 'अरोरा' में ही आ जातीं। वहाँ इस समय भीड़ भी नहीं रहती। यह किसी के बाप की जगह नहीं है। जो पैसे दे, जाकर बैठ सकता है।"

उत्तरा ने क्षमा माँगने के स्वर में कहा—"भई रेस्तोरां में हमें अच्छा नहीं लगता। कोई न कोई जान-पहचान के लोग आ ही जाते हैं, तब झेंप लगती है। कल मैंने कुछ लिखा है, तुम्हें दिखाना चाहती थी।"

"पर यहाँ मन में धुकधुकी-सी लगी रहती है।" व्यास ने अपनी बेचैनी प्रकट की।

उत्तरा ने सान्त्वना के स्वर में कहा—"धुकधुकी किस बात की ? पिता जी परसों 'सोलन' चले गये हैं। दोनों भाई छः बजे से पहले अपना दफ्तर नहीं छोड़ सकते। आज तो रतन भी नहीं।" कुछ चौंक कर उत्तरा बोली, "हाय, मैं चाय तो ले आऊँ।"

उत्तरा कुर्सी से उठने को हुई।

व्यास ने उसका हाथ पकड़ कर रोक लिया—"रतन कहाँ गया ? उस कमबख्त की आँखों में भी बहुत चोकसी भरी रहती है।"

"जब मैंने तुम्हें फोन किया था, उस के कुछ देर बाद आकर बोला, साहब ने दोपहर में दफ्तर में बुलाया है, किसी साहब के यहाँ से कुछ सामान लेकर आना है। मैंने सोचा तू भी जा। भगवान ऐसा रोज करें"

उत्तरा का चेहरा खिल उठा—"चाय मैं ही बना लूंगी। ट्रे लगा कर रखी हुई है।"

व्यास ने उत्तरा को अपनी ओर खींचते हुए कहा—"भगवान ने समय दिया है, एक बार तो समीप हो जायें।"

उत्तरा व्यास के निकट खिच आई और लजाकर [illegible] अपना मुख व्यास के कंधे पर रखकर छिपा लिया।

व्यास ने उत्त[illegible] [illegible]ों को [illegible] "सुनो तो !"

[illegible] के कंधे पर

[illegible] करते हुए

यशवन्त दरवाजे में चिटखनी लगाकर धमकी के ढंग से आस्तीनें चढ़ाता हुआ व्यास की ओर बढ़ आया। दूसरी ओर से बलवन्त व्यास को घूरता हुआ उसकी ओर आ गया।

बलवन्त ने दबे परन्तु कड़े स्वर में पूछा—"तुम कौन हो ?"

व्यास उत्तर दे सके उससे पहले ही यशवन्त आस्तीनों को और ऊपर चढ़ाता हुआ पूछ बैठा—"किस से पूछ कर बंगले में आया ? बिना पूछे कैसे आया।"

व्यास ने अपमान और धमकी की इस अद्भुत परिस्थिति में साहस बटोर कर उत्तर दिया—"मैं बिना पूछे नहीं आया हूँ। आप लोगों की बहन मिस उत्तरा ने टेलीफोन पर सन्देश देकर मुझे यहाँ बुलाया है। आप लोग मुझे पहचानते भी हैं। मैं इस मकान में पहले भी कई बार आया हूँ। आप से परिचय भी हो चुका है। शायद आप भूल गये हैं।"

बलवन्त ने पाँव पटककर धमकाया—"हम तुमको नहीं जानता। तुम चोर है। हमने तुमको यहाँ चोरी करते पकड़ा है।"

व्यास ने समझा, वह जाल में फंस गया है।

यशवन्त अपनी चढ़ाई हुई आस्तीनों से, शक्ति प्रदर्शन के लिये फूलते डौले दिखाकर अधिक समीप सरकता आ रहा था।

व्यास ने भय प्रकट न करने और आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए कहा—"यह भले आदमियों का व्यवहार नहीं है। मैं बिना बुलाये नहीं आया हूँ। आपकी बहन के बुलाने पर आया हूँ। आपको आपत्ति है तो मैं जा रहा हूँ।"

बलवन्त ने फिर दबे हुए क्रुद्ध स्वर में धमकाया—"तुम नहीं जा सकता। तुम चोर है। तुम्हें पुलिस ले जायेगी।" बलवंत पार्टीशन के पीछे रखी हुई टेलीफोन की मेज की ओर बढ़ा।

व्यास ने डरते-डरते भी क्रोध प्रकट किया—"आप इस तरह धोखा देकर मेरा अपमान कर रहे हैं। मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा। आप मुझे कैसे रोक सकते हैं ?"

यशवन्त के बहुत देर से उतावले दोनों हाथों के घूंसे व्यास के दायें-बायें जबड़ों पर जा पड़े। वह क्रोध में जोर से गुर्रा उठा—"स्वाइन ! गुण्डा ! सूअर !"

व्यास ने चेहरे को चोट से बचाने के लिए चेहरे को दोनों बाहों में ले। उसे अपने शारीरिक बल का नहीं अपनी बातों और लेखनी के बल

का ही भरोसा था। वह लड़खड़ा गया। उसका होंठ अपने दाँत और यशवंत के घूँसे के बीच कुचल जाने से खून टपकने लगा। जेब में रुमाल न पाकर व्यास अपनी बुशशर्ट की आस्तीन से खून पोछने लगा।

बलवन्त ने यशवन्त की ओर देखकर आदेश दिया—"दरवाजा बन्द कर दो! देखना, यह चोर भाग न सके। मैं अभी टेलीफोन करता हूँ।"

यशवन्त ने व्यास को धक्के से सोफा पर गिरा कर धमकाया—"खबरदार उठा तो, सिर तोड़ दूंगा। सुअर! बदमाश!" और उसने बैठक के बरामदे में खुलते दरवाजे में भी चिटखनी लगा दी।

उसी समय बैठक का पीछे का दरवाजा जिससे उत्तरा बिजली की केटली बुझाने गई थी, भड़भड़ा उठा।

बलवन्त की दृष्टि उस ओर गई और उसके मुख से बेबसी में निकल गया—"यह क्या मुसीबत है!" उसने यशवन्त की ओर बढ़ कर धीमे से कहा, "उसे दूर रखो। कह दो, यहाँ दूसरे कई आदमी हैं। पुलिस का मामला है। जरा ठहरे।"

यशवन्त ने किवाड़ों की चिटखनी गिराकर दरवाजे को तनिक खोला।

व्यास को उत्तरा की पुकार सुनाई दी—"मुझे आने दीजिये। यह आप......।"

यशवन्त ने तुरन्त दूसरी ओर जाकर किवाड़ों को अपने पीछे जोर से मूंद लिया।

व्यास को संकट में सहारे की आशा हुई। वह ऊंचे स्वर में पुकार उठा—"उत्तरा जी आप आइये! देखिये यहाँ... ..."

बलवन्त दाँत पीसकर उस पर झपट पड़ा।

व्यास का बोल रुक गया।

कुछ पल बाद उसे किवाड़ों के पीछे कहीं खूब जोर से किवाड़ बन्द कर दिये जाने की आहट सुनाई दी। व्यास बेबसी में बलवन्त की ओर देख कर होंठ का खून पोंछता रह गया।

बलवन्त उद्विग्नता में चहल-कदमी करता हुआ यशवन्त के लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था। यशवन्त फिर किवाड़ों को खोल कर बैठक में आ गया और उसने घूमकर किवाड़ों में चिटखनी चढ़ा दी।

यशवन्त लौटकर बोला—"सब इन्तजाम कर दिया।"

व्यास ने होंठ से बहते खून को आस्तीन से दबाते हुये एक बार फिर साहस किया—"खन्ना साहब, याद रखिये, आप बहुत ज्यादती कर रहे हैं !"

खन्ना ने उसे लाल आँखों से घूर कर डांट दिया—"शटप यू स्वाइन !" और यशवन्त की ओर देखा, "तुम इस पर आँख रक्खो। मैं पुलिस को फोन कर रहा हूँ।"

बलवंत नक्काशीदार पार्टीशन के दूसरी ओर चला गया।

बलवन्त ने फोन का रिसीवर उठाकर एक नम्बर घुमाया। हठात उसके मुख से निकल गया—"ओह ! आई सी" उसने रिसीवर को वापस रखकर अपना बैग मेज पर से उठा कर खोला। बैग में से लोहे के दो लम्बे-लम्बे कांटे से निकाल कर मेज पर रख दिये। स्वगत उस के मुख से निकला, "अब सब ठीक हो जायेगा।"

बलवंत फिर फोन के डायल का नम्बर घुमाकर सुनने लगा।

बलवन्त फोन पर बोला—"हैलो, हैलो मैकाले रोड पुलिस-स्टेशन ! क्या मिस्टर नारायण हैं ?"

बलवन्त तनिक हकला गया—"न, न पर्सनल नहीं। मैं रिपोर्ट दे रहा हूँ।"

"....................."

"यस वेल, मेरे मकान पर एक चोर मौजूद है।"

"......................."

"जी नहीं। मैं और मेरा भाई अभी अपने दफ्तर से लौटे हैं। हमने उसे अपने ड्राइंग रूम में आफिस टेबिल के पास देखा।"

"......................."

"हां, हाँ हमें देखते ही उसने भागने की कोशिश की।"

"......................."

"हम लोगों ने उसे पकड़ लिया है।"

"......................."

"नहीं, आई कांट, मैं क्या कह सकता हूँ। हथियार दिखाई तो नहीं दिया।"

"......................."

"जी मेरा नाम बलवन्त खन्ना है, मैकाले रोड पर सात, सात नम्बर।"

"......................."

"ड्राइंग रूम में मेरी आफिस टेबिल का ड्राज खोलने की कोशिश कर रहा था।"

"........................ ...."

"नहीं, भागते समय उस के हाथ से गिर पड़ा।"

"........................"

"मिस्टर नारायण आ गये ? गुड, थैंक यू वैरी मच !"

"........................"

"हाँ, भाई बहुत जल्दी।"

"........................"

"अरे भाई, ख़तरा तो है ही।"

बलवन्त ने रिसीवर फोन पर रखते हुये छोटे भाई की ओर देखा—"मिस्टर नारायण ही आ रहा है। अच्छा हुआ।"

बलवन्त ने रिसीवर टेलीफोन पर रखा तो व्यास फिर बोल उठा—"आप रिपोर्ट दे चुके हैं। मुझे भी फोन पर बात कर लेने दीजिये।"

यशवन्त फिर घूंसा तान कर उस की ओर बढ़ा—"चुप ! यू गुण्डा, सुअर, बदमाश ! तेरी हिम्मत इस मकान में कदम रखने की ? चोर !"

बलवन्त दोनों हाथ पतलून में डाल कर सिर झुकाये सोचता हुआ बैठक के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गया, वैसे ही लौट उस ने यशवन्त को संकेत से व्यास से दूर, दरवाज़े के समीप ले जाकर धीमे स्वर में समझाया—

"हम लोग बरामदे में आये तो इसे देखा। नो, ""हाँ बैठक के किवाड़ खुले थे, समझे ! इसे पार्टीशन के पीछे से भागते देखा। तुमने आगे बढ़कर रोका। अच्छा हाँ, जल्दी से इस की बुशशर्ट कन्धे से फाड़ दो; जल्दी !"

यशवन्त तुरन्त व्यास की ओर गया और उस के सीने पर बुशशर्ट का कपड़ा पकड़ कर बहुत जोर से खींच कर कुछ कपड़ा फाड़ दिया और बलवन्त के समीप जाकर बोला—"बस ?"

बलवन्त खिड़की से बाहर झांकते हुये समझाने लगा—"तुमने इसे भागते देखकर दो-तीन घूंसे इस के चेहरे पर मार दिये।"

एक मोटर के रुकने की आहट पाकर बलवन्त बोला—"बस, पुलिस आ गई।" बलवन्त ने खिड़की से झांका, "वैरी गुड, नारायण खुद है। तुम किवाड़ खोल दो।"

यशवन्त ने बैठक के किवाड़ खोल दिये। एक पुलिस इन्स्पेक्टर चार वरदी सिपाहियों सहित बैठक के दरवाज़े पर आ गया।

"हम लोग भीतर आ सकते हैं ?" इन्सपेक्टर ने अधिकारपूर्ण विनय के स्वर में पूछा और बलवन्त की ओर परिचय की मुस्कराहट से देखा ।

"तशरीफ़ लाइये । हम लोग आप की ही प्रतीक्षा कर रहे थे ।" बलवन्त ने स्वागत की मुस्कान से आगे बढ़कर इन्सपेक्टर से हाथ मिलाया ।

इन्सपेक्टर दो सिपाहियों के साथ भीतर चला आया । दोनों सिपाही व्यास को देख कर उस के दायें-बायें खड़े हो गये । दो सशस्त्र सिपाही बैठक के दरवाज़े के दोनों ओर बराम्दे में खड़े रहे ।

"मैकाले रोड, सात नम्बर यही बंगला है ?" इन्सपेक्टर ने तटस्थ भाव से प्रश्न किया, मानो वह बलवन्त का पूर्व परिचित न हो, "आप मिस्टर खन्ना हैं । आप ही ने फोन पर अपने घर में चोर होने की रिपोर्ट की है ? मेरा नाम नारायणप्रसाद सिन्हा है । मैं ऐरिया इन्सपेक्टर हूँ ।"

"क्षमा कीजियेगा, आप को कष्ट देना आवश्यक था ।" बलवन्त ने मुस्कराहट छिपाकर और माथे पर बल डालकर उत्तर दिया । उस ने व्यास की ओर संकेत किया, "वह आदमी है । हम लोगों ने पकड़कर बैठा रखा है । अब उसे आप सम्भालिये । यह मेरे छोटे भाई यशवन्त खन्ना हैं ।"

यशवन्त ने भी आगे बढ़कर इन्सपेक्टर से हाथ मिलाया ।

व्यास तुरन्त सोफा से बोल उठा—"यह सब धोखा है । मुझे घर पर बुलाकर धोखा दिया गया है, मेरा अपमान किया गया है ।"

इन्सपेक्टर ने विस्मय प्रकट करने के लिये आँखें फैलाकर व्यास की ओर देखा और उत्तर दिया—"तुम्हारी भी बात सुनी जायेगी ।" और फिर बलवन्त को सम्बोधित किया, "आप फ़रमाइये ?"

बलवन्त इन्सपेक्टर को कुर्सी पर बैठाकर स्वयं दूसरी कुर्सी पर बैठ गया । जेब से सुनहरी सिगरेट केस निकालकर उस ने इन्सपेक्टर के सामने सिगरेट प्रस्तुत किया—"सिगरेट लीजिये" और एक सिगरेट अपने होठों में ले लिया । बलवन्त ने लाइटर जलाकर पहले इन्सपेक्टर का और फिर अपना सिगरेट जला लिया ।

बलवन्त ने सिगरेट केस और लाइटर मेज पर रख कर, खँखार कर बोलने के लिये गला साफ़ किया, कलाई की घड़ी देखकर बोला—"लगभग अठारह मिनट हुये, मैं और मेरा भाई यशवन्त खन्ना अपने दफ्तर से लौटे थे । हम ने देखा कि बैठक का दरवाजा ठीक से बन्द नहीं था । हमें सन्देह हुआ....।"

बलवन्त ने एक बार फिर खँखारा—"फिर मैंने आगे बढ़कर किवाड़ खोल कर भीतर झाँका तो मुझे पार्टीशन के पीछे मेज के पास यह आदमी दिखाई दिया। हमारी आहट पाते ही यह आदमी हमारी ओर झपटा। नो, मेरा मतलब है, इस दरवाजे से बाहर भागने के लिये दौड़ा; यानि कि बाहर निकल कर भाग जावे। यशवन्त ने एकदम रास्ता रोककर इसे पकड़ लिया। इस आदमी ने भागने की कोशिश की तो हाथापाई में इस के मुह पर भी चोट आई है, यू कैन सी। मेरा भाई यशवन्त बाक्सर है। ही इज ए स्पोर्टस मैन, कसरती जवान है...."

बैठक के बन्द दरवाजों के पीछे कहीं से बन्द किवाड़ों के भड़भड़ाने की आहट सुनाई दी।

बलवन्त जरा चौंक गया। वह बोलता-बोलता रुक गया और फिर चिंता प्रकट न करने के लिये खांस कर बोलने लगा—"तो फिर हम लोगों ने इसे पकड़ कर बैठा लिया और किवाड़ बन्द कर लिये। मैंने मेज पर जाकर देखा तो मेज के दराज के नीचे ताला तोड़ने के कांटे पड़े हुये थे।"

"ताला तोड़ने के कांटे" इन्सपेक्टर नारायण ने पूछा, "मैं देख सकता हूँ?"

बलवन्त ने कुर्सी से मेज की ओर जाकर, मेज पर रखे लोहे के कांटे लाकर इन्सपेक्टर के हाथ में दे दिये।

बन्द दरवाजों के पीछे से दरवाजे पीटने की भड़भड़ाहट फिर सुनाई दी।

बलवन्त ने चौंककर चिंता से इन्सपेक्टर की ओर देखा और अपने आप को सम्भाल लिया।

कांटों को ध्यान से देखकर इन्सपेक्टर ने धीमे से कहा—"अच्छा, यह हथियार हैं? हाँ, आप कहते जाइये, मैं सुन रहा हूँ।"

बलवन्त कुछ खांसकर बोलने लगा—"इस आदमी ने बैठक का दरवाजा भी उन्हीं कांटों से खोला होगा।"

इन्सपेक्टर—"यह आप का अन्दाजा है।"

बलवन्त—"आफ़कोर्स; आ हाँ, मेरा ख्याल है" फिर हमने मॅकाले रोड पुलिस-स्टेशन पर तुरन्त फोन कर दिया।"

बलवन्त को चुप हो जाते देख कर इन्सपेक्टर ने पूछा—"और कुछ; आप को और कुछ कहना है?"

बलवन्त ने अपना सिगरेट राखदानी में दबाते हुये उत्तर दिया—"बस,

फिर हम ने पुलिस स्टेशन पर फोन कर दिया। इट वाज़ आवर ड्यूटी।"

व्यास गर्दन सीधी कर बोला—"अब मैं बोल सकता हूँ।"

इन्सपेक्टर ने उस की ओर हाथ से चुप रहने का संकेत कर कहा—"ज़रा सब्र करो।" और बलवन्त से प्रश्न किया, "इस मकान में कौन-कौन लोग रहते हैं?"

बलवन्त ने कुछ सोच पाने के लिये नया सिगरेट इन्सपेक्टर को पेश कर स्वयं भी दूसरा सिगरेट होठों में दबाकर उत्तर दिया—"इस मकान में हमारे माता-पिता भी रहते हैं परन्तु पेरेन्ट्स जुलाई से सोलन चले गये हैं। ये मेरा छोटा भाई यशवन्त खन्ना है। हमारी छोटी बहन है। बहन दोपहर बाद प्रायः घर पर नहीं रहती। वह 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक परिषद' की आनरेरी जाइंट-सैक्रेटरी है।"

इन्सपेक्टर ने माथा खुजाते हुये पूछा—"नौकर आप के यहाँ कितने हैं?"

बलवन्त ने लम्बा कश खींचकर उत्तर दिया—"नौकर दो हैं। एक फ़ादर के साथ सोलन गया है, दूसरा नौकर यहाँ है। उस की बुढ़िया मां भी यहाँ ही रहती है। चौका-बर्तन, झाड़ू-बुहारी कर देती है। रसोई के पीछे बराम्दे में पड़ी रहती है। बंगले का एक कामन माली है।"

बन्द किवाड़ों के परे से सुनाई देती भड़भड़ाहट इस बार इन्सपेक्टर ने भी सुनी और पूछा—"क्या दूसरी तरफ कोई और लोग भी रहते हैं?"

इन्सपेक्टर के प्रश्न से बलवन्त और यशवन्त के चेहरों पर चिंता का भाव आ गया। बलवन्त ने हकलाकर उत्तर दिया—"अफ़.........आफ़कोर्स, दूसरे किरायेदार हैं।"

यशवन्त ने विज्ञता से उत्तर दिया—"रौन होगी। रौन, हमारी बिच डौग है!"

इन्सपेक्टर—"कुतिया है। आप की कुतिया आने-जाने वाले लोगों पर भौंकती नहीं?"

अवसरवश इसी समय रौन पिछवाड़े से आकर बराम्दे में खड़े पुलिस वालों पर जोर से भौंक पड़ी। यशवंत के बुला लेने पर भीतर आकर व्यास की ओर देखकर भौंकने लगी।

यशवन्त ने उसे पुचकार कर चुप करा दिया।

इन्सपेक्टर ने कुतिया की ओर मुस्कराकर देखा—"कुतिया सुन्दर है।

प्योर ब्रीड मालूम होती है।"

"आफ़कोर्स प्योर ब्रीड, शी इज पेडिग्री !" बलवन्त ने उत्साह से कहा, "कर्नल लोनावाला के कुत्ते की बहन है। सेम लिटर। कर्नल के कुत्ते को इस साल डौग शो में प्राइज मिला है। आई सी ! आप को भी कुत्तों का शौक है ? इस के लिये जोड़ा ढूंढ रहा हूँ। कर्नल से बात करूंगा।"

इन्सपेक्टर ने सकोच अनुभव कर बात बदली—"नो, नहीं, मैं यह पूछ रहा था, यह कुतिया आने वालों पर भौंकती नहीं है ?"

बलवन्त ने उत्तर दिया—"यह वाच डौग नहीं है। बस शौक की चीज समझिये, स्वीट थिंग। चौकीदारी के लिये तो एलसेशियन ठीक रहता है।"

बलवन्त भाई की ओर घूम गया—"तुम जानते हो, मिसेज सुन्दरैया की एलसेशियन ने तीन बच्चे दिये हैं न ?"

व्यास फिर बोला—"अब मैं बोल सकता हूँ ?"

इन्सपेक्टर ने उसकी ओर घूर कर देखा और विनय के विद्रूप से उत्तर दिया—"शौक से फरमाइये ?"

व्यास—"पहली बात तो आप यह नोट कीजिये कि मुझे मिस्टर खन्ना की बहन मिस उत्तरा ने बुलाया था। मैं उनसे मिलने के लिये यहाँ आया था।"

इन्सपेक्टर नारायण के माथे पर त्योरियाँ पड़ गईं। इन्सपेक्टर ने बलवन्त की ओर एक नजर डाल कर व्यास को घूम कर पूछा—"किस काम के लिये बुलाया था ? तुम किस कम्पनी में काम करते हो ? लांड्री में हो या बिजली कम्पनी में ?"

व्यास ने गर्दन ऊँची कर उत्तर दिया—"मिस उत्तरा ने मुझे काम के लिये नहीं, मुलाकात के लिये बुलाया था।"

इन्सपेक्टर के स्वर में कड़ाई आ गई—"जरा सोचकर बात करो। पहली बात यह कि तुमने कम-से-कम यहाँ ट्रेसपास, यानी मकान में बिना इजाजत घुसने का जुर्म किया। दूसरे तुम एक सम्मानित परिवार की लड़की पर लाछन लगा रहे हो। जानते हो, किसी की मानहानि करना भी जुर्म है।"

व्यास उठ कर खड़ा हो गया—"आपका अगर ऐसा ढंग है तो मैं कुछ कहना नहीं चाहता। आप मुझे फोन करने दीजिये, मैं पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट से बात करूंगा।"

इन्सपेक्टर मुस्कुराया—"आप सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस से बात करेंगे ?"

व्यास ने निर्भयता से कहा—"यस, मैं सुपरिन्टेन्डेन्ट से बात करूँगा। योर एटीच्यूड इज़ पारशल। आप सरीहन पक्षपात कर रहे हैं। मैं किसी अन्य पुलिस अफसर के भेजे जाने का अनुरोध करूँगा।"

इन्सपेक्टर चौंका, पलभर सोच और सम्भल कर बोला—"मैंने क्या पारशियलिटी दिखाई है ? मिस्टर खन्ना की रिपोर्ट थी। मैंने पहले उनकी बात सुनी है। अब आपकी बात सुन रहा हूँ।"

व्यास और अधिक तनकर बोला—"अच्छा सुनिये, ये लोग" उस ने बलवन्त खन्ना और यशवन्त खन्ना की ओर संकेत किया, "मुझ पर चोरी का आरोप लगा रहे हैं। आप मुझे हिरासत में लेंगे। मुझे जमानत देनी होगी। मैं अपने जामिन बुलाने के लिये फोन करना चाहता हूँ और मैं एक वकील को भी मौक़ा देख लेने के लिये यहाँ ही बुला लेना चाहता हूँ।"

इन्सपेक्टर का चेहरा और भी गम्भीर हो गया। उस ने दो बार पलक झपक कर सोचा और बोला—"अपना कुछ परिचय देने की कृपा कीजिये।"

व्यास ने बुशर्ट की जेब से अपना कार्ड निकालकर इन्सपेक्टर की ओर बढ़ा दिया और बोला—"मेरा नाम के० एल० व्यास है और कार्ड पर मेरा एड्रेस है। फोन नम्बर ७७०९ है। आप 'इण्डियन हैरल्ड' को फ़ोन करके पूछ लीजिये मैं वहाँ ज्वाइण्ट-एडीटर हूँ। आप एडीटर मिस्टर नाथन से कहिये मैं चोरी के आरोप में पकड़ा जा रहा हूँ और मैं उन्हें जमानत देने के लिये ७ नम्बर, मैकाले रोड पर बुला रहा हूँ....।"

बन्द किवाड़ों की भड़भड़ाहट एक बार फिर अधिक ज़ोर से सुनाई दी।

व्यास ने उत्तेजना में खड़े होकर उस ओर संकेत कर कहा—"यह भड़-भड़ाहट आप नहीं सुन रहे हैं ? इन लोगों ने मिस उत्तरा को कमरे में बन्द कर दिया है। उन्हें सामने क्यों नहीं आने दिया जाता ? शी इज़ आफ़ मेजर एज, बालिगउम्र हैं। आप इस पर एक्शन क्यों नहीं ले रहे हैं ? मैं इस की इत्तला पुलिस स्टेशन पर देना चाहता हूँ। आप मुझे सुपरिन्टेन्डेंट मिस्टर माथुर से बात करने दीजिये।"

इन्सपेक्टर नारायण ने एक गहरी साँस लेकर बलवन्त की ओर देखा—
- तो नई-नई उलझनें सामने आ रही हैं।" और फिर व्यास की ओर घूम
..., "मिस्टर व्यास आप तशरीफ़ तो रखिये।"
.वाड़ों की भड़भड़ाहट फिर सुनाई दी।

व्यास ने अधिकार के स्वर में आग्रह किया—"आप पहले मिस खन्ना को क़ैद से छुड़ाइये और उन्हें यहाँ बुलवाइये, उलझनें स्वयं सुलझ जायंगी।"

बलवन्त बोल उठा—"मिस खन्ना मकान में नहीं हैं। परिषद में गई हैं।"

व्यास ने एक क़दम आगे बढ़कर माँग की—"इन्सपेक्टर साहब, मैं आप से मकान की तलाशी लेने के लिये अनुरोध कर रहा हूँ। यह माँग मैं प्रेस प्रतिनिधि की हैसियत से कर रहा हूँ। मैं इस तलाशी में गवाह रहूँगा। आप चाहें तो और गवाह भी बुला सकते हैं। अगर आप मेरी रिपोर्ट पर एक्शन नहीं लेंगे तो इस की जिम्मेवारी आप पर होगी।"

इन्सपेक्टर नारायण कुर्सी पर से उठकर खड़ा हो गया। बहुत नम्रता और आदर से व्यास के कन्धों पर हाथ रखकर उस ने कहा—"व्यास साहब, उत्तेजना की जरूरत नहीं है। आप तशरीफ़ तो रखिये। आपकी बात पर उचित ध्यान दिया जायगा।"

इन्सपेक्टर ने व्यास को सोफा पर बैठा दिया और बलवन्त की ओर घूमकर बोला—"मिस्टर खन्ना, जरा सुनिये!"

इन्सपेक्टर नारायण खन्ना के कंधे पर हाथ रखकर पार्टीशन की ओर दो कदम ही बढ़ा था कि व्यास ने फिर खड़े होकर विरोध किया—"इन्सपेक्टर साहब आप तहक़ीक़ात करने आये हैं। आप षडयंत्र नहीं कर सकते! आप पहले मिस खन्ना को बुलवाइये।"

इन्सपेक्टर नारायण ने व्यास के विरोध की उपेक्षा कर खन्ना के कान में अपनी बात कह दी और फिर व्यास को सम्बोधन किया—"व्यास साहब, मुझे विस्मय है, आपकी स्थिति के सम्मानित सज्जन के साथ यह सब गलतफ़हमी कैसे हो गई? आप इस झगड़े को छोड़िये। आप फ़र्माइये, कहाँ तशरीफ़ ले जाना चाहते हैं? आपको पहुँचा दिया जाए।"

व्यास ने ऊँचे स्वर में विरोध किया—"नहीं साहब, मेरे साथ धोखा किया गया है। मेरा अपमान किया गया है। मेरा आग्रह है कि आप मिस खन्ना को बुलवाएं और चोरी की रिपोर्ट की तहक़ीक़ात करें। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ, उन्होंने मुझे क्यों बुलवाया है। उन पर भी जब्र हो रहा है। जब तक वे नहीं आएँगी, मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा और आप इन लोगों के (उसने खन्ना भाइयों की ओर संकेत किया) व्यवहार के लिये साक्षी होंगे।"

इन्सपेक्टर ने व्यास को आत्मीयता के ढंग से समझाया—"व्यास साहब,

आप भाई-बहनों के झगड़े में क्यों पड़ते हैं ? आप चलिये । आपकी चोट को डाक्टर से धुलवाकर कोई मलहम लगवा लेना उचित होगा ।"

किवाड़ फिर जोर से भड़भड़ा उठे और दबी हुई चीख भी सुनाई दी ।

व्यास ने रोष के स्वर में चुनौती दी—"आप सुन नहीं रहे हैं कि जुल्म हो रहा है ? आप जुर्म को देखकर उसकी उपेक्षा कर रहे हैं । भाई अपनी बहन को कत्ल कर देगा तो आप उसे भाई-बहन का झगड़ा कह कर उपेक्षा कर जायंगे ? आपको मालूम करना चाहिये कि मिस खन्ना को क्यों बन्द किया गया है ! मुझे मिस खन्ना ने फोन करके बुलाया है तो मैं जरूर उनसे पूछूंगा कि उन्होंने मुझे क्यों बुलाया है !"

"अच्छा आप तशरीफ तो रखिये" इन्सपेक्टर ने और भी नम्रता से अनुरोध किया और बलवन्त और यशवन्त को पार्टीशन की ओर ले जाकर बात करने लगा ।

यशवन्त विवशता में गर्दन झुकाकर पीछे के किवाड़ों की चिटखनी खोल कर भीतर गया । किवाड़ खुल जाने पर भड़भड़ाहट और चीख अधिक स्पष्ट सुनाई दी ।

व्यास ने फिर इन्सपेक्टर को सम्बोधन किया—"आप देख रहे हैं कितना अत्याचार हो रहा है ?"

यशवन्त ने अपने पीछे किवाड़ मूंद लिये ।

इन्सपेक्टर व्यास के समीप सोफा पर आ गया और परामर्श देने लगा—"व्यास साहब, यह सब क्या और कैसे हो गया ? मुझे आपसे पूरी सहानुभूति है । आप इस झगड़े में कैसे फँस गये । आप गौर कीजिये इस मामले में..."

मुंदे हुये किवाड़ों के पीछे से यशवन्त का स्वर सुनाई दिया—"जरा सुनो ! प्लीज........।"

"नो आई डोंट केयर । कुछ परवाह नहीं............" उत्तरा के चिल्ला कर उत्तर देने की आवाज आई ।

किवाड़ खुल गये । उत्तरा आंचल से क्रोध और रुलाई से लाल चेहरा पोंछती हुई बदहवासी की-सी हालत में कमरे में आ गई । आते ही वह पुकार उठी—"मैंने बुलाया है, इन्हें मैंने बुलाया है । आप लोग क्या कर रहे हैं....?"

व्यास उठकर खड़ा हो गया और उसने इन्सपेक्टर को सम्बोधन किया—"सुन लीजिये । आप गवाह हैं ।"

इन्सपेक्टर सोफे से उठकर उत्तरा की ओर बढ़ गया और उसे आश्वासन दिया—"मिस खन्ना, सिस्टर, आप शान्त हो जाइये ! यहाँ कोई अन्याय नहीं हो सकेगा ।"

उत्तरा व्यास के कटे ओंठ और खून लगी आस्तीन की ओर संकेत कर क्रोध से चिल्ला उठी—"अत्याचार कैसे नहीं हो रहा । इन्हें मारा गया है । इन्हें मैंने बुलाया है ।" उसने यशवन्त और बलवन्त की ओर घूम कर सम्बोधन किया, "आपको मारना है तो मुझे मारिये ।"

इन्सपेक्टर ने भर्त्सना की दृष्टि से बलवन्त की ओर देखा ।

बलवन्त के चेहरे पर विवशता थी ।

स्थिति सम्भालना आवश्यक समझ कर नारायण ने उत्तरा की ओर बढ़ कर कहा—"देखो बहन, जो हुआ, बहुत बुरा हुआ । अब मैं यहाँ मौजूद हूँ । आप विश्वास रखें । आप मुंह धो कर आइये । शेष बात आपके सामने ही होगी । आप अपने मेहमान को भी आश्वासन दे सकती हैं ।"

नारायण ने यशवन्त के कंधे पर हाथ रख कर आदेश दिया—"मिस्टर खन्ना, आप बहन को ले जाकर इनका मुंह धुलवा लायें ।"

उत्तरा झमक कर बोली—"आप मेरी फिक्र न कीजिये । मुझे मुंह धोने की कोई आवश्यकता नहीं है । आप लोगों को जो बात करनी है, मेरे सामने कीजिये ।" उसने एक बार आँचल से मुंह पोंछ लिया और सामने आ गये केशों को माथे से पीछे हटा कर एक कुर्सी पर जम कर बैठ गई ।

"ठीक है ! ठीक है !" इन्सपेक्टर ने स्वीकार कर लिया, "दैट इज़ आल-राइट । मैं तो केवल आपको सुविधा के विचार से ही कह रहा था । आफ़ कोर्स; ब त खेदजनक काड हो गया है, बहुत बड़ी गलतफहमी हो गई है । इसे समाप्त करना चाहिये । व्यास साहब, आप खड़े कैसे हैं, तशरीफ रखिये ।"

नारायण ने व्यास के कन्धे को सहारा देकर उसे सोफा पर बैठा दिया और स्वयं भी एक कुर्सी पर बैठ कर बोला—"ओफ ! देखिये, गलतफहमी में क्या से क्या हो गया । रियली, बहुत ही खेदजनक बात है । व्यास साहब जैसे सम्मानित और सज्जन व्यक्ति के साथ भयंकर अन्याय हुआ है । गलतफहमी चाहे जैसे भी हुई हो, मेरे विचार में मिस्टर बलवन्त और यशवन्त को व्यास जी के सम्मुख अवश्य ही खेद प्रकट करना चाहिये और मैं इंसिनिटली कहूँगा, क्षमा माँगनी चाहिये ।"

व्यास ने नारायण की सहानुभूति को अस्वीकार कर कहा—"इन्सपेक्टर साहब, मेरा विचार है कि आप अपने कर्तव्य की सीमा से बाहर जा रहे हैं। आपको चोरी की घटना की रिपोर्ट मिली है। आप तहकीकात कीजिए। निर्णय अदालत में होगा।"

बलवन्त ने अपनी कुर्सी पर आगे की ओर झुक कर कहना चाहा—"वट, नो ; वट..."

इन्सपेक्टर ने अधिक विनम्र स्वर में उसे टोक दिया—"पुलिस अफसर के नाते न सही, एक नागरिक के नाते भी तो मैं बात कर सकता हूँ। पुलिस का काम सदा झगड़ने में सहायता देना ही नहीं, समझौते में सहायता देना भी हो सकता है। मैं किसी भी तथ्य से इन्कार नहीं कर रहा हूँ। मेरी धृष्टता क्षमा कीजिये ; मैं आप सब के मित्र की स्थिति से बात करना चाहता हूँ। अदालत में जाना, मेरे विचार में शायद आप जैसे लोगों के सम्मान के अनुकूल नहीं होगा।"

व्यास ने उत्तेजना से कहा—"मेरे सम्मान पर चोट आने में कसर ही क्या रह गई है ?"

उत्तरा ने समर्थन किया—"हाँ, इसमें क्या सन्देह है। इनका बहुत अपमान हुआ है।"

"मैं भी यही कह रहा हूँ, निस्संदेह बहुत अपमान हुआ है" नारायण ने उत्तरा का सबल समर्थन किया, "और बहन, आप मुझे क्षमा करेंगी, इस घटना का उत्तरदायित्व जाने या अनजाने में आपके भाइयों पर है। हमें मामले को सुलझाने का यत्न करना चाहिए और मिस्टर बलवन्त और मिस्टर यशवन्त को व्यास जी से सविनय क्षमा माँगनी चाहिये वरना मामला सुलझने के बजाय और उलझ जायगा।"

व्यास ने धमकी दी—"सुलझने-उलझने से क्या मतलब ? मामला तो अदालत में सुलझेगा और पत्रों द्वारा पूरा समाज उस पर विचार करेगा।"

"पूरा समाज ?" इन्सपेक्टर ने माथे पर विस्मय और चिन्ता की रेखा प्रकट करने के लिये भवें चढ़ाकर सब लोगों की ओर देखा और बोला—"क्या कह रहे हैं आप ? जरा सोच लीजिये ! पूरा समाज ? जरा सोचिए, खन्ना परिवार और व्यास जी जैसे लोगों को कौन नहीं जानता ? सोच लीजिये, अदालत में तो मुख्य बात होगी बहन उत्तरा की गवाही और उस गवाही पर जिरह ?"

व्यास—"आफकोर्स । मुझे विश्वास है, उत्तरा जी अदालत के सामने सच ही कहेंगी।"

"हां, मैं सच कहूंगी।" उत्तरा ने दृढ़ता से हामी भरी।

"सच या झूठ जो हो!" इन्सपेक्टर ने आँखों से आशंका का भाव प्रकट किया, "सिस्टर, सच या झूठ जो हो, अदालत में जाना और वकीलों की जिरह का उत्तर देना विकट अनुभव होता है। आप लोग जानते हैं, वकील लोग जिरह में कैसे सवाल कर सकते हैं? कितना जलील कर सकते हैं? इस खेदजनक घटना के मूल में, मेरा विचार है मिस्टर खन्ना की, अपने परिवार की इज्जत बचाने के लिये उद्विग्नता ही थी। यह बात आशा है उत्तरा बहन भी मानेंगी।"

उत्तरा ने विरोध किया—"इसमें खानदान की इज्जत का क्या प्रश्न था? अपने खानदान की इज्जत के लिए क्या किसी की जान ले लेंगे? खामुखाह किसी का मुह काला कर देंगे?"

इन्सपेक्टर ने स्वीकार किया—"बहन, आप ठीक कह रही हैं। ऐसा हर-गिज़ नहीं होना चाहिए था। मेरा तो आग्रह है कि आप के भाइयों की भूल है। समझ और व्यवहार दोनों में गलती हुई है। अब मैं भूल के मार्जन और सम्मान-रक्षा की भावना की बात कह रहा हूँ। बहन को अदालत में जाना पड़ा तो सम्मान की क्या रक्षा होगी?"

व्यास बोला, "अगर मुझ पर चोरी का आरोप सफलता से लगा दिया जा सकता तो क्या मिस उत्तरा की गवाही अदालत में न होती? बहन को अदालत में ले जाने का प्रबन्ध तो इन लोगों ने खुद ही किया है।"

इन्सपेक्टर—"आफकोर्स, मुख्य भूल मिस्टर बलवंत और मिस्टर यशवंत की है। मैं तो कहूंगा कि इस लज्जाजनक घटना के लिए दोनों भाइयों को खेद प्रकट कर के क्षमा मांगनी ही चाहिए। मुझे तो विश्वास है कि खन्ना भाई अपने खानदान के सम्मान के विचार से न तो स्वयं अदालत में जाना चाहेंगे और व्यास जी की पोजीशन जान लेने पर उनका अदालत में जाना भी उचित नहीं समझेंगे।"

व्यास का चोट खाया होंठ फड़फड़ा उठा और आंखों में क्रोध की लाली आ गई—"जी हां; खानदान की इज्जत का यह ढंग बहुत अच्छा है कि पुलिस के सहयोग से मुझे चोर बना कर जेल भिजवा देने का षड़यन्त्र किया जाये।"

व्यास ने नारायण की सहानुभूति को अस्वीकार कर कहा—"इन्सपेक्टर साहब, मेरा विचार है कि आप अपने कर्तव्य की सीमा से बाहर जा रहे हैं। आपको चोरी की घटना की रिपोर्ट मिली है। आप तहकीकात कीजिए। निर्णय अदालत में होगा।"

बलवन्त ने अपनी कुर्सी पर आगे की ओर झुक कर कहना चाहा—"बट, नो ; बट···"

इन्सपेक्टर ने अधिक विनम्र स्वर में उसे टोक दिया—"पुलिस अफसर के नाते न सही, एक नागरिक के नाते भी तो मैं बात कर सकता हूँ। पुलिस का काम सदा झगड़ने में सहायता देना ही नहीं, समझौते में सहायता देना भी हो सकता है। मैं किसी भी तथ्य से इन्कार नहीं कर रहा हूँ। मेरी धृष्टता क्षमा कीजिये ; मैं आप सब के मित्र की स्थिति से बात करना चाहता हूँ। अदालत में जाना, मेरे विचार में शायद आप जैसे लोगों के सम्मान के अनुकूल नहीं होगा।"

व्यास ने उत्तेजना से कहा—"मेरे सम्मान पर चोट आने में कसर ही क्या रह गई है ?"

उत्तरा ने समर्थन किया—"हाँ, इसमें क्या सन्देह है। इनका बहुत अपमान हुआ है।"

"मैं भी यही कह रहा हूँ, निस्संदेह बहुत अपमान हुआ है" नारायण ने उत्तरा का सबल समर्थन किया, "और बहन, आप मुझे क्षमा करेंगी, इस घटना का उत्तरदायित्व जाने या अनजाने में आपके भाइयों पर है। हमें मामले को सुलझाने का यत्न करना चाहिए और मिस्टर बलवन्त और मिस्टर यशवन्त को व्यास जी से सविनय क्षमा माँगनी चाहिये वरना मामला सुलझने के बजाय और उलझ जायगा।"

व्यास ने धमकी दी—"सुलझने-उलझने से क्या मतलब ? मामला तो अदालत में सुलझेगा और पत्रों द्वारा पूरा समाज उस पर विचार करेगा।"

"पूरा समाज ?" इन्सपेक्टर ने माथे पर विस्मय और चिन्ता की रेखा प्रकट करने के लिये भवें चढ़ाकर सब लोगों की ओर देखा और बोला—"क्या कह रहे हैं आप ? जरा सोच लीजिये ! पूरा समाज ? जरा सोचिए, खन्ना परिवार और व्यास जी जैसे लोगों को कौन नहीं जानता ? सोच लीजिये, अदालत में तो मुख्य बात होगी बहन उत्तरा की गवाही और उस गवाही पर जिरह ?"

व्यास—"आफकोर्स। मुझे विश्वास है, उत्तरा जी अदालत के सामने सच ही कहेंगी।"

"हाँ, मैं सच कहूंगी।" उत्तरा ने दृढ़ता से हामी भरी।

"सच या झूठ जो हो!" इन्सपेक्टर ने आँखों से आशंका का भाव प्रकट किया, "सिस्टर, सच या झूठ जो हो, अदालत में जाना और वकीलों की जिरह का उत्तर देना विकट अनुभव होता है। आप लोग जानते हैं, वकील लोग जिरह में कैसे सवाल कर सकते हैं? कितना जलील कर सकते हैं? इस खेदजनक घटना के मूल में, मेरा विचार है मिस्टर खन्ना की, अपने परिवार की इज्जत बचाने के लिये उद्विग्नता ही थी। यह बात आशा है उत्तरा बहन भी मानेंगी।"

उत्तरा ने विरोध किया—"इसमें खानदान की इज्जत का क्या प्रश्न था? अपने खानदान की इज्जत के लिए क्या किसी की जान ले लेंगे? खामुखाह किसी का मुंह काला कर देंगे?"

इन्सपेक्टर ने स्वीकार किया—"बहन, आप ठीक कह रही हैं। ऐसा हरगिज नहीं होना चाहिए था। मेरा तो आग्रह है कि आप के भाइयों की भूल है। समझ और व्यवहार दोनों में गलती हुई है। अब मैं भूल के मार्जन और सम्मान-रक्षा की भावना की बात कह रहा हूँ। बहन को अदालत में जाना पड़ा तो सम्मान की क्या रक्षा होगी?"

व्यास बोला, "अगर मुझ पर चोरी का आरोप सफलता से लगा दिया जा सकता तो क्या मिस उत्तरा की गवाही अदालत में न होती? बहन को अदालत में ले जाने का प्रबन्ध तो इन लोगों ने खुद ही किया है।"

इन्सपेक्टर—"आफकोर्स, मुख्य भूल मिस्टर बलवंत और मिस्टर यशवंत की है। मैं तो कहूंगा कि इस लज्जाजनक घटना के लिए दोनों भाइयों को खेद प्रकट कर के क्षमा मांगनी ही चाहिए। मुझे तो विश्वास है कि खन्ना भाई अपने खानदान के सम्मान के विचार से न तो स्वयं अदालत में जाना चाहेंगे और व्यास जी की पोजीशन जान लेने पर उनका अदालत में जाना भी उचित नहीं समझेंगे।"

व्यास का चोट खाया होंठ फड़फड़ा उठा और आँखों में क्रोध की लाली आ गई—"जी हाँ; खानदान की इज्जत का यह ढंग बहुत अच्छा है कि पुलिस के सहयोग से मुझे चोर बना कर जेल भिजवा देने का षडयन्त्र किया जाये।"

बलवन्त ने संकोच के कारण हकलाते हुए कहा—"आ-आ-आई नेवर व-व मीट सो फार। हमारा ऐसा इरादा नहीं था। सिर्फ़……।"

व्यास ने और भी क्रोध से कहा—"जी हां, आप शायद किसी नाटक की रिहर्सल कर रहे थे। अब पाँसा पलट गया तो आप का यह मतलब भी पलट गया। अब अदालत में जाने में आप को नाक कटने लगी। आप अदालत क्यों जायेंगे? परन्तु मैं तो जाऊँगा। मेरे साथ धोखा हुआ है। मेरी मानहानि हुई है। अब मैं ही अदालत जाऊँगा और इन्सपेक्टर साहब, आप गवाह होंगे।"

इन्सपेक्टर—"वैल वैल, एज फैक्टस गो, आई मीन मेरा मतलब है कि तथ्यों से मैं इन्कार नहीं कर सकता।"

बलवन्त ने टोका—"पर यह सब……"

इन्सपेक्टर ने उसे रोक कर अपनी बात पूरी की—"लेकिन इस समय मामला तो मिस्टर व्यास के आनर के विंडिकेशन का है और सब बात बहन उत्तरा की गवाही पर निर्भर करती है, यह ध्यान में रखिये।

उत्तरा ने सिर झुकाये कहा—"मैं सच कहूँगी। मैंने बुलाया था।"

"देयर यू आर। सुन लिया आपने?" व्यास ने चेतावनी दी।

इन्सपेक्टर—"मेरा अभिप्राय है कि गलतफहमी से हुई घटना के कारणों पर अदालत में बहस, उस पर वकीलों की जिरह और फिर पत्रों में उसका प्रकाशन किस के लिए सम्मानजनक होगा? कहिये मिस्टर खन्ना? बहन उत्तरा आप ही बताइए?

दोनों सिर झुकाए चुप रह गये।

व्यास बोल उठा—"मैं यह शौक से नहीं कर रहा हूँ। मुझे मजबूर कर दिया गया है।"

इन्सपेक्टर—आई एडमिट, मैं आप से सहमत हूँ और मैं मिस्टर बलवन्त और यशवन्त से साफ़-साफ़ कह देना चाहता हूँ कि दोनों भाइयों को इस घटना के लिये अनकंडीशनल मुआफी माँगनी चाहिये और अगर बहन उत्तरा मेरी धृष्टता क्षमा करें तो मैं बहन से अनुरोध करूँगा कि वे अपने भाइयों को व्यास जी से क्षमा माँगने के लिये मजबूर करें।"

उत्तरा ने सिर झुकाकर साड़ी का किनारा दाँतों में दबाकर कह डाला—'अवश्य माँगनी चाहिये।"

व्यास को क्रोध आ गया। वह तीखे स्वर में बोला—"क्षमा माँग लेने

का क्या मतलब है ? देट इज ओनली स्लावरी (यह तो फ़ैशन है), समा तो किसी से कोहनी छू जाने पर भी मांग ली जाती है !"

व्यास ने अपने कटे हुये होंठ को ओर इशारा करके पूछा—"यह क्या केवल कोहनी छू जाना है ? किसी को घर बुलवाकर चोर बना देना केवल कोहनी छू जाना होगा ?"

इन्सपेक्टर नारायण की मुद्रा बहुत ही विचारपूर्ण हो गई। वह बहुत ध्यान से व्यास की आँखों में देखकर बोला—"ठीक है। अच्छा, तो आप कहिये आप के प्रति हुये अन्याय का क्या प्रतिकार होना चाहिये ? आप अपनी मांग पेश कीजिये। यू हैव एवरी राइट।"

व्यास ने निस्संकोच उत्तर दिया—"मैं कहूँगा, मुझ पर लगाये गये कलंक का पूरा प्रतिकार होना चाहिये।"

उत्तरा अपनी साड़ी की खूँट को झटकर उस पर दृष्टि लगाये बोल उठी—"हाँ जरूर होना चाहिये।"

सदानन्द के मुख से निकल गया—"आप क्या चाहते हैं ?"

इन्सपेक्टर ने उसे टोक कर उत्तरा को सम्बोधन किया—"मैं तो स्वयं ही कह रहा हूँ कि व्यास जी के अपमान का उचित प्रतिकार होना चाहिये परन्तु कैसे ? आप जरा शान्त होकर सोचिये ? वी हैव टु थिंक अबाउट इट काम्ली।"

व्यास ने नारायण की बात अस्वीकार करने के लिये सिर हिलाकर कहा—"फ़ैसला अदालत में ही होगा।"

"अदालत में ?" नारायण ने पूछा, "आप बहन उत्तरा को अदालत में घसीटियेगा ?"

व्यास क्रोध में उबल पड़ा—"इन्सपेक्टर साहब, यह क्या इतनी छोटी बात है ? मेरी इज्जत का कोई मूल्य नहीं ? मेरे पास बंगले न हों, मोटरें न हों परन्तु मेरा भी आत्म-सम्मान है ! मैं सिर दे सकता हूँ, अनादर और अपमान को नहीं निगल सकता !"

इस बार इन्सपेक्टर भी ऊँचे स्वर में बोला—"तो आप बदला चाहते हैं ? खन्ना साहब की बहन को अदालत में खड़ी करके ही आप को इज्जत की रक्षा होगी ?"

व्यास क्रोध में सोफा से उठकर बहुत उत्तेजना में बोला—"इन्सपेक्टर साहब, आप पक्षपात कर रहे हैं, यह आप के लिये उचित नहीं।"

"मैं क्या पक्षपात कर रहा हूँ व्यास साहब ? मैं तो आप से पूछ रहा हूँ कि क्या आप के अपमान का प्रतिकार केवल अदालत में ही हो सकता है ?" इन्सपेक्टर ने पूछा ।

"सर्टेनली, ओनली इन कोर्ट !" व्यास ने धमकी के स्वर में उत्तर दिया।

"आप भी कोर्ट में ही जाना उचित समझती हैं ?" इन्सपेक्टर ने धीमे से उत्तरा से प्रश्न किया ।

"अदालत के सामने साफ-सच्ची बात कहने में मुझे क्या भय है ।" उत्तरा ने निर्भय होकर कहा ।

"हूँ !" इन्सपेक्टर ने अपनी पतलून की जेबों में हाथ धंसाकर पल भर के लिये सिर झुकाकर सोचा और उत्तरा से प्रश्न किया—"आप अदालत में अपनी साफ-सच्ची बात को प्रमाणित भी कर सकेंगी ?"

"सच को प्रमाणित करने का क्या मतलब ?" उत्तरा ने विस्मय से पूछा।

"मतलब है कि यदि वकीलों ने आपकी बात पर विश्वास न करके जिरह की तो आप उत्तर दे सकेंगी ?" इन्सपेक्टर ने पूछा ।

"क्यों नहीं, मैं क्या सच बोलने से डरती हूँ ?" उत्तरा फिर निर्भय बोली।

"नहीं आप डरती नहीं हैं" इन्सपेक्टर बहुत आत्मीयता से बोला, "फिर भी मैं आपको स्थिति समझा देना चाहता हूँ। आप कभी अदालत में गई हैं ? आपने कभी जिरह सुनी है ?"

"अदालत में नहीं गई, तो क्या हुआ, आई एम नाट अफ्रेड !" उत्तरा ने दृढ़ता प्रकट की ।

"आफकोर्स, यू आर नाट अफ्रेड।" इन्सपेक्टर ने आत्मीयता से स्वीकार किया, "पर आपको अपनी बहिन मान कर स्थिति समझा देना चाहता हूँ। डू यू माइंड ?"

"नो, आई डोंट माइंड !"

"वैल, वकील प्रश्न कर सकता है कि आपने क्या मिस्टर व्यास को अपने घर में अपने भाइयों की अनुमति या जानकारी से बुलाया था। आप को मानना पड़ेगा कि आपने इन्हें भाइयों की अनुमति और जानकारी के बिना बुलाया था। ठीक है न ?"

"यस ।"

"देखिये बहिन बुरा न मानियेगा, मैं आपको केवल स्थिति समझा रहा

हूँ। वकील जिरह कर सकता है कि क्या आपने मिस्टर व्यास को इस प्रकार भाइयों से छिपाकर, एक ही बार बुलाया था या प्रायः बुलाती रहती हैं ? या आप मिस्टर व्यास से, इस प्रकार कितनी बार कितने स्थानों पर मिल चुकी हैं ? या जिरह करेगा, क्या आप केवल मिस्टर व्यास से ही इस प्रकार मिलती हैं अथवा कई दूसरे नवयुवकों से भी इस प्रकार मिलती रहती हैं ? वह पूछ सकता है कि यह आप का केवल शौक है अथवा मिस्टर व्यास से आप का कोई विशेष सम्बंध है ? अदालत में जो भी प्रश्न किये जायेंगे, आप को उत्तर देने ही होंगे, यह आपको जान लेना चाहिये।"

उत्तरा गर्दन झुकाये मौन रह गई।

"इन्सपेक्टर साहब, आप गवाह को इंटीमीडेट (आतंकित) कर रहे हैं।" व्यास ने बहुत क्रोध से विरोध किया।

इन्सपेक्टर नारायण आंखों में धमकी परन्तु स्वर में नम्रता से बोला— "व्यास साहब, मैं गवाह को इंटीमिडेट नहीं कर रहा हूँ। मैं आपको और बहन उत्तरा को मात्र वास्तविक स्थिति बता रहा हूँ। मेरा विचार है कि आप के हृदय में उत्तरा बहन के प्रति आदर का भाव है। आप अदालत में यही सफाई देंगे न कि मिस उत्तरा ने भाइयों से चोरी-चोरी आपको घर पर बुलाया था।

व्यास बहुत क्रोध में बोला—"इंसपेक्टर साहब, आप मुझ पर अनुचित दबाव डाल रहे हैं। आई मस्ट गो टू दि कोर्ट !"

उत्तरा के माथे पर बल पड़ गये। वह सहसा उठ खड़ी हुई और व्यास की ओर मुंह करके बोली—"अच्छा, आप को जो करना है, आप भी कर लीजिये।"

उत्तरा ने भाइयों की ओर संकेत किया—"इन के लिये खानदान की इज्जत की तुलना में मेरा कुछ मूल्य नहीं। आप के व्यक्तित्व के सम्मान के सम्मुख भी मेरा कोई अस्तित्व नहीं। सब की इज्जत है, लड़की की इज्जत कुछ नहीं।"

उत्तरा का स्वर ऊँचा हो गया,

"मैं कहती हूँ मैं अदालत में नहीं जाऊँगी, नहीं जाऊँगी !"

उत्तरा बैठक से चली जाने के लिये घूम गई।

"चाहे साइनाइड खाकर ही सो जाना पड़े !"

न्याय और दण्ड

जिस वर्ष मैट्रिक की परीक्षा दी, राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम के पहले असहयोग आन्दोलन का युग था।

मैट्रिक की परीक्षा के परिणाम की प्रतीक्षा थी। अपने पहाड़ी जिले के देहात में मामा के यहाँ चला गया था कि स्वास्थ्य सुधरेगा और कुछ दिल-बहलाव भी रहेगा। उन दिनों मन में यह उथल-पुथल भी थी कि अपना जीवन सफल बना सकने के लिये अपने कुछ सफल सम्बंधियों की तरह, वकील बन सकने के लिये कालेज में भरती हो जाऊं या देश की स्वतंत्रता के लिये विदेशी सरकार से असहयोग के कर्तव्य की पुकार पर आन्दोलन के स्वयं-सेवकों की सेना में भरती हो जाऊं ?

उस समस्या के समाधान के लिये आत्मिक बल प्राप्त करने के प्रयोजन से नित्य गीता का भी पाठ करता था। एक दिन गीता पढ़ लेने के बाद खाली समय काटने के लिये एक गुलेल बनाने का विचार आया। बांस काटने और छील सकने के लिये घर में औजार न थे। औजार मांगने के लिये गांव की बस्ती से कुछ नीचे बसी हुई डूमनों की बखरी में धक्कू के यहां गया। यह भी ख्याल था कि धक्कू से ही बांस कटवा-छिलवा लूंगा।

डूमनों की बखरी में जाकर मालूम हुआ कि उस दिन आठ मील दूर व्यास के पत्तन पर कोई छोटा-मोटा मेला था। धक्कू मेले में बांस की चंगेरें, पिटारियां और टोकरियां बेचने के लिये चला गया था। धक्कू के बाप को पिछले दिन बुखार आ गया था इसलिये मेले में धक्कू अकेला ही गया था।

धक्कू से पुराना परिचय था। बचपन में मामा के यहां कई बार गया था। माता-पिता लाहौर में रहते थे। गर्मी की छुट्टी हो जाती तो मैं दूसरे-

तीसरे बरस पहाड़ में मामा के यहाँ चला जाता था। धक्कू से परिचय नया हो जाता था।

बचपन में धक्कू के साथ गुल्ली-डंडा खेलने में यह लाभ था कि उसका काम प्रायः गुल्ली उठा कर लाना रहता और मेरा काम टल्ल मारना। धक्कू को धमकाया जा सकता था क्योंकि वह डूमने का लड़का था। उसके बाप और चाचा मेरे मामा और गांव के दूसरे खत्री-राजपूत-ब्राह्मणों की जमीनों में हल जोतते थे, उन के यहाँ की पांत खेतों में ढोते थे। हम लोगों के यहाँ दूध फालतू होने पर डूमने अपना मिट्टी का बर्तन लाकर छाछ मांग ले जाते थे। किसी के यहाँ जानवर मर जाने पर जानवर को ले जाना या कभी-कभी कुछ अनाज लेकर ईंधन के लिये लकड़ी थोर जाना या इस गांव से उस गांव तक बोझ पहुँचा देना भी उन का ही काम था।

जब मैं छटी और आठवीं कक्षा में था, धक्कू का चाचा भी विवाह कर डोमनी ले आया था और अलग बस गया था। धक्कू भी टोकरी बुनने या खाद ढोने और खेत की निराई के काम में मां-बाप की मदद करने लगा था परन्तु मेरे कहने पर झड़बेरियों से बेर या दूसरे पहाड़ी फल चुनने के लिये साथ चल देता था। पांधे जी के भांजे के कहने पर धक्कू के मां-बाप काम का हर्ज भी सह जाते। कांटों में धंसने का काम धक्कू करता और बेर या फल हम तीन भाग कर के बांट लेते थे। दो हिस्से मेरे होते और एक हिस्सा धक्कू का। धक्कू ने इस पर कभी आपत्ति न की थी। यह मेरा परम्परागत अधिकार था क्योंकि डूमने मालिक लोगों की जमीन पर खेती करते थे तो फसल का एक तिहाई ही उनका भाग होता था।

अभी दिन का पहला पहर भी पूरा नहीं चढ़ा था। धक्कू के बाप से सुना कि लड़का ब्यास के पत्तन पर मेले में गया है तो दिल-बहलाव के लिये स्वयं भी उधर ही चल दिया। दोपहर तक मेले में पहुँच भी गया।

मेले में नगाड़ा बज रहा था और अखाड़े में जोड़ छूट रहे थे। एक चक्कर में चार-पांच दूकानें हलवाइयों की, छः-सात बजाजे की, आठ-दस बिसाती की और एक अच्छी बड़ी दूकान बर्तनों की भी थी। चार दूकानें चांदी और मुलम्मे के गहनों की थीं।

पहाड़ी ग्राम-वधुएं, मेले का सिंगार किये, भारी-भारी लहंगे पहने और नये पीले-लाल रंग से गंधाती छिछोरियां ओढ़े इन दूकानों को घेरे बैठी थीं। कभी

वे घूंघट का पल्ला उठाकर आगे-पीछे भी ताक लेतीं। घूंघट में से उनकी बड़ी-
बड़ी नथें झलक जातीं। लाल-पीले घूंघटों में से छन कर उनके गोरे चेहरों पर
पड़ा प्रकाश उन के चेहरों और आंखों के कटाक्षों पर और पानी चढ़ा देता था।

देहाती लोहार, कुम्हार भी अपना थोड़ा बहुत सौदा ले आये थे। एक
तरफ तीन डूमने छाज, चंगेरें, पिटारियां और टोकरियां लिये बैठे थे। घक्कू
भी इन्हीं में था। दो मास पहले से उसके घर भर ने मेले के लिये सौदा बना
कर तैयार किया था! घक्कू की पिटारियां और टोकरियां अच्छी थीं। डूमनों
में उसी का सौदा पहले बिक रहा था। उसके सामने मूल्य में मिले अनाज का
छोटा सा ढेर लग गया था। नकदी मिलने पर वह जतन से अंटी में खोंसता जा
रहा था। पूछने पर उसने बताया, उसे एक रुपया बारह आना मिल चुका था।

सोचा, लौटते समय राह अच्छी कट जाये इसलिये घक्क से कहा—साथ-
साथ चलेंगे। मैं घूम-फिर कर मेला देखने लगा।

चौथा पहर लगते-लगते घक्कू मुझे ढूंढ़ता कुश्तियों के अखाड़े के पास आ
पहुँचा। उसके हाथ में एक चमाचम, कांसे की नयी थाली थी। उस का सब
सौदा बिक गया था। सौदे के मोल पाया अनाज भी उसने बेच डाला था और
बिक्री से पाया सब दाम भी खर्च कर दिया था। उसने कई चीजें खरीद ली
थीं—एक कांसे की थाली, छोटी बहन के लिये कुर्ते का कपड़ा और चार आने
की तेल की जलेबी।

घक्कू ने थाली मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा—"मालिक, देखो तो कैसी है?
खत्री ने मुझे ठग तो नहीं लिया, साढ़े चार रुपये में दी है।"

मैंने अपने हाथों थाली कभी खरीदी नहीं थी। कांसे-पीतल का भाव और
दाम भी नहीं जानता था। अपना अज्ञान प्रकट न करने के लिये कह दिया—
"ठीक ही ही है। फर्क होगा तो यही आठ-दस आने का।"

"मरने दो, आठ-दस आने का क्या है मालिक!" घक्कू ने बेपरवाही से
कहा, "इतना भी धोखा न दे सो बनिया क्या? मेरा बड़ा जी था मालिक,
थाली में खाने का। कभी थाली में नहीं खाया। इस में खाने से ऐसा लगेगा
जैसे सोने पर से उठाकर खा लिया। क्यों मालिक, इतनी बड़ी चीज कभी
नहीं खरीदी। पड़ोसी देखेंगे तो सालों की आंखें फटी रह जायंगी! हमारी
झोपड़ी के किवाड़ कमजोर हैं। जाकर उन्हें ठीक करूंगा। कोई मेरी थाल
उठा कर ही न चलता बने। मालिक, पूरे दो महीने की कमाई है।"

हम लोग मेले की भीड़ से निकल कर सूनी सड़क पर आ गये थे। पक्कू का कोकिल जैसा स्वर था; कोकिल जैसा ही वह भी गाने वाला था। उस से सभी लोग गाने के लिये कहते रहते थे। यह हुक्म होने पर सदा सुना भी देता था। वह थाली बजा-बजा कर पहाड़ी झिंझोटी गाने लगा।

गीत का भाव था—

"जालिम का छोकरा बेईमान हो गया।
मेरे तो रो-रोकर दोनों कपड़े भीग गये।
धूप मेरे कुर्ते को सुखा नहीं पाती,
आँसुओं की धारा उन्हें फिर भिगो देती है।"

आधे रास्ते में एक जगह बैठ कर पक्कू ने दूसरी झिंझोटी भी सुनाई—

"दिल की धड़कन सुना के रे,
मन में प्यार बसा के रे,
पर्दों को बिसरा दिया तूने।"

सूरज डूबने के एक घड़ी बाद ही हम लोग गाँव लौटे।

भाभी ने मजाक किया—"भैया लाहौर में रहता है, इतना पढ़-लिख गया है पर मेला देखने का शौक अभी नहीं गया। देखें तो, मेले से क्या सौगात खरीद कर लाया है?"

"तुम्हारे पहाड़ी मेले में मेरे खरीदने लायक हो ही क्या सकता है" मैंने उत्तर दिया और आँगन में बैठ कर पक्कू से सुनी झिंझोटी गुनगुनाने लगा।

भाभी ने फिर बोली मारी—"मालूम होता है, किसी छोकरी का पीछा करते मेले में गया था। किसी की नैनकटारी लग गयी क्या? हाँ, उम्र भी तो हो आयी है। यही तो वक्त है बेचारे का। ननद को संदेसा भेजूंगी भाई!"

मैंने सफाई दी—"यह तो पक्कू रास्ते में गा रहा था। मेले से उसने काँसे की थाली खरीदी है। रास्ते भर थाली बजा-बजा कर गाता आया। क्या गला है! बहुत अच्छा लगा।"

भाभी ने विस्मय से होंठों पर हाथ रख कर मुझ से पूछा—"पक्कू ने काँसे की थाली खरीदी है?"

"हाँ, क्यों?" मैंने हामी भरी, "कहता था, उसे थाली में खाने का बहुत शौक है। बेचारे ने कभी थाली में नहीं खाया। दो महीने की कमाई बेचारे ने थाली में लगा दी।"
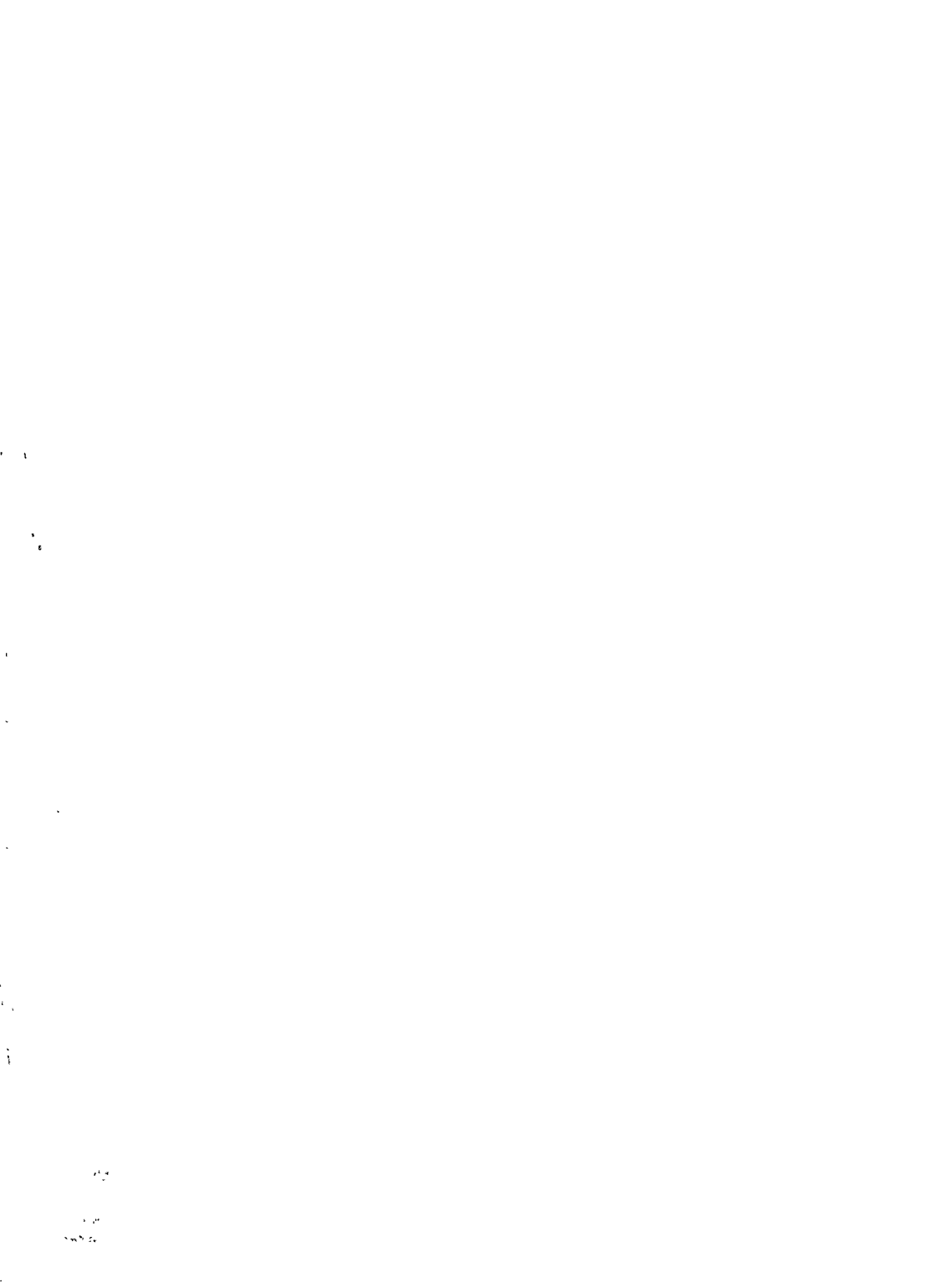
बदनसिंह उबल-उबल पड़ता था। अपशब्दों से डूमनों को ललकार कर कह रहा था—"लाठी से सालों को धरती पर बिछा दूंगा। साहू जी, तुमने देखा डूमड़े को; बधी-लाठी लेकर चलता है। साले, बंधी लाठी राजपूत के हाथ की चीज है कि नीच कौम के हाथ की? मेरा तो देखकर खून उबल गया।"

मुखिया ने गाली देकर समझाया—"सालों के पेट में अन्न बहुत पड़ने लगा है। तुम्ही लोग जहाँ आध सेर देते थे, अब सेर दे डालते हो। हमें भी देना पड़ता है, क्या करें। सालों को हर घर से छाछ मिल रही है। हम ही न दें तो क्या करें। सब को अपनी-अपनी पड़ी है। सब कहते हैं, पहले हमारा काम निबटा देवे। अब उनकी आंखों के सामने चरबी क्यों नहीं छायेगी? उन्हे दुनिया ऊपर-नीचे दीखने लगी है। उन्हे ब्राह्मण-ठाकुर नीचे दीख रहे हैं, अपने को ऊंचा समझ रहे हैं। कल आकर तुम्हारे पीढ़े-खाट पर भी बैठेगा तो क्या कहोगे?"

मुखिया तहसील के प्राइमरी-स्कूल में पांच जमात पढ़े थे। मामा ने घर पर ही पोथी-पत्रा बांचना और कर्म-काड सीख लिया था। मुझे चौपाल में केवल अपने को ही शिक्षित समझने का गर्व जरूर था। उस अभिमान को दबा न सका, बोला—"अब तो कांग्रेस और महात्मा गांधी ने फैसला दे दिया है कि सब लोग बराबर है, छुआछूत नही होनी चाहिये।"

मामा ने मेरी इस छोटे मुह बड़ी बात पर सभी लोगों के सामने डांट दिया—"तू पढ़ा-लिखा है। तू गीता पढता है। क्या लिखा है गीता में?" वे जल्दी-जल्दी कुछ उच्चारण कर गये जिसे किसी ने कुछ न समझा। शायद समझा कि शास्त्र और धर्म का वचन है। मैंने इतना ही समझा कि मामा 'स्वधर्मे निधनंश्रेयः पर धर्मो भयावह' कहना चाहते हैं।

दूसरे दिन सूरज निकलते-निकलते मामा, मुखिया, ठाकुर लोग, गांव के बढ़ई और धिर्य सभी लाठियां लेकर डूमनों की बखरी पर जा पहुंचे। धक्कू की थाली तोड़ दी गयी। उनके जमा किये बांस और कपरियां फूंक दी गयीं। अनाज भरने की मिट्टी की डोली भी तोड़ दी गयी। झोपड़ी के किवाड़ भी तोड़ कर जला दिये गये। धक्कू को चार-छः लाठियां और दो-दो उसके बाप-मां और चाचा-चाची को भी पड़ीं।

सब डूमनों ने धरती पर सिर रखकर अपराध के लिए क्षमा मांगी।

मेरा खून उबलता रहा। आवेश वश में न आ सका तो इस अन्याय के

"क्या कह रहा है तू ? तूने देखा ?"

"खरीदी है तो क्या अचरज किया मामी ?"

"भांजे, क्या पागल हो गया है" मामी ने विरोध-भरा विस्मय प्रकट किया, "धानुक-डूमने कांसे की थाली में खायेंगे तो ठाकुर-ब्राह्मण क्या मिट्टी के बर्तन में खायेंगे ?"

"कौन कहता है तुम से मिट्टी के बर्तन में खाने को ?" मैंने विरोध किया, "तुम जिस में चाहो खाओ, वह जिस में चाहे खाये।"

मामी पांव पटकती भीतर जाती हुई बोली—"यह सब तुम्हारे लाहौर में ही चलता होगा। हमारे यहां ऐसा अनर्थ कभी नहीं हुआ, न हो सकेगा।"

संध्या मामा जरा अबेर से आये थे। मामी ने उनके कंधे की चादर लेकर खूंटी पर टांगते हुए मेले से धक्कू के कांसे की थाली खरीद लाने की बात एक ही सांस में कह दी।

मामा ने धक्कू को कई गालियां उसके मां-बाप और बहन के सम्बंध से दीं। हाथ-मुंह धोकर उन्होंने खाना खाया और पड़ोस में, गांव के मुखिया के यहां इस विषय में परामर्श करने चले गये।

मैं मन ही मन सोचता रहा—"आखिर क्या मुसीबत कर दी धक्कू ने ?"

मुखिया के आंगन में चौपाल लगी थी। बीच में लकड़ी का एक कुंदा धीमे-धीमे सुलग रहा था। कली (पीतल का हुक्का) घूम रही थी। मुखिया खत्री थे। बदनसिंह और नजरसिंह राजपूत होने के कारण जरा नीचे थे इसलिये कली से चिलम उतार कर तम्बाकू पी रहे थे। मामा ब्राह्मण होने के कारण ऊंचे थे। वह भी पीतल की कली से चिलम उतार कर धुआं ले लेते थे।

डूमनों के कांसे की थाली खरीद लाने के अनाचार और अधर्म पर बात हो रही थी। तर्क कम था, गाली अधिक थी।

मामा समझा रहे थे, डूमनों के हाथ में रुपया हो गया है तो थाली खरीदी है, कल घोड़ा खरीद कर सवारी करेंगे। तुम्हारी भैंस मर जायेगी तो वह क्यों कढ़ेरेगा ? कहेगा, जैसे तुम हो, वैसे हम हैं। क्या तुम्हारा दिया खाता हूँ ? तुम्हारा क्या दबाव है पांधे जी ?"

मामा ने समझाया—"सरसुती और लक्ष्मी का निवास नीच के यहां निषिद्ध है। जैसे राक्षस के यहां सीता माता नहीं रहीं। नीच दब कर नहीं रहेगा तो नीच क्यों होगा; बोलो ?"

बदनसिंह उबल-उबल पड़ता था। अपशब्दों से डूमनों को ललकार कर कह रहा था—"लाठी से सालों को धरती पर बिछा दूंगा। साह जी, तुमने देखा डूमड़े को; बभी-लाठी लेकर चलता है। साले, बंधी लाठी राजपूत के हाथ की चीज है कि नीच कौम के हाथ की ? मेरा तो देखकर खून उबल गया।"

मुखिया ने गाली देकर समझाया—"सालों के पेट में अन्न बहुत पड़ने लगा है। तुम्हीं लोग जहाँ आध सेर देते थे, अब सेर दे डालते हो। हमें भी देना पड़ता है, क्या करें। सालों को हर घर से छाछ मिल रही है। हम ही न दें तो क्या करें। सब को अपनी-अपनी पड़ी है। सब कहते हैं, पहले हमारा काम निबटा देंगे। अब उनकी आखो के सामने चरबी क्यों नहीं छायेगी ? उन्हें दुनिया ऊपर-नीचे दीखने लगी है। उन्हें ब्राह्मण-ठाकुर नीचे दीख रहे हैं, अपने को ऊंचा समझ रहे हैं। कल आकर तुम्हारे पीढ़े-खाट पर भी बैठेगा तो क्या कहोगे ?"

मुखिया तहसील के प्राइमरी-स्कूल में पाच जमात पढ़े थे। मामा ने घर पर ही पोथी-पत्रा बाँचना और कर्म-काड सीख लिया था। मुझे चौपाल में केवल अपने को ही शिक्षित समझने का गर्व जरूर था। उस अभिमान को दबा न सका, बोला—"अब तो कांग्रेस और महात्मा गांधी ने फैसला दे दिया है कि सब लोग बराबर हैं, छुआछूत नहीं होनी चाहिये।"

मामा ने मेरी इस छोटे मुह बड़ी बात पर सभी लोगों के सामने डांट दिया—"तू पढ़ा-लिखा है। तू गीता पढ़ता है। क्या लिखा है गीता में ?" वे जल्दी-जल्दी कुछ उच्चारण कर गये जिसे किसी ने कुछ न समझा। शायद समझा कि शास्त्र और धर्म का वचन है। मैंने इतना ही समझा कि मामा 'स्वधर्मे निधनंश्रेयः पर धर्मो भयावह' कहना चाहते हैं।

दूसरे दिन सूरज निकलते-निकलते मामा, मुखिया, ठाकुर लोग, गांव के बढ़ई और धिर्य सभी लाठियां लेकर डूमनों की बखरी पर जा पहुँचे। धक्कू की थाली तोड़ दी गयी। उनके जमा किये बास और कपरियां फूक दी गयीं। अनाज भरने की मिट्टी की डोली भी तोड़ दी गयीं। झोपड़ी के किवाड़ भी तोड़ कर जला दिये गये। धक्कू को चार-छः लाठियां और दो-दो उसके बाप-मां और चाचा-चाची को भी पड़ी।

सब डूमनों ने धरती पर सिर रखकर अपराध के लिए क्षमा मागी।

मेरा खून उबलता रहा। आवेश वश में न आ सका तो इस अन्याय के

विरुद्ध रपट लिखाने तहसील की ओर चल पड़ा ।

अपने धर्म का पालन करते हुए ही मृत्यु श्रेष्ठ है का क्या मतलब ? धक्कू लाठी लेने और थाली में खाने की इच्छा न करे । जो सेवा करने वाले वर्ग में पैदा हो गया है, वह सेवा करने के अतिरिक्त और कोई इच्छा न करे । मनुष्य के अधिकार और स्थिति उसकी योग्यता से नहीं जन्मगत श्रेणी से ही निश्चित रहें ।

तहसील का रास्ता छः मील का था । इतनी दूर जाने में सोचने का बहुत अवसर मिला । सोचा तो सोच में फंस गया, मैं तो सरकार से असहयोग करने वाले स्वयं-सेवकों की सेना में भरती होना चाहता हूँ और फिर यह भी याद आया कि धर्म के मामले में अंग्रेजी राज हस्तक्षेप नहीं करता । हम धर्म के अन्ध-विश्वास में जितने बेबस बने रहें, उनके लिये अच्छा ।

चुपचाप लौट आया ।

तब क्रोध आया धक्कू पर ही कि उसने सत्याग्रह क्यों नहीं किया, क्यों नहीं वह अपने न्याय के लिये लड़ा ?

फिर खयाल आया, उसका सत्याग्रह मामा, मुखिया और ठाकुरों की दृष्टि में पाप का ही आग्रह होता । धक्कू का सत्याग्रह उनके स्वार्थ; परम्परागत विश्वास और धर्म-ग्रन्थों की दृष्टि से पाप होता । लड़ सकने के सामर्थ्य के बिना धक्कू की मनुष्य बनने की इच्छा को न्याय कैसे माना जा सकता है ?

परन्तु मैं यह अब तक नहीं सोच सका कि धक्कू लड़ता तो कैसे ? पहले तो अपने ही विश्वास-संस्कार से लड़ता और फिर अकेले लड़ता तो कैसे ?

धक्कू यदि अपने जैसों सब को एक साथ मरने-जीने को कहता तो वह श्रेणी संघर्ष और श्रेणी द्वेष फैलाने के लिये जेल जाता । शायद भगवान ने उसे इतनी बुद्धि ही नहीं दी थी कि अन्याय और अपना अधिकार पहचानता । अकेले जीवित रहने की अपेक्षा सामूहिक जीवन की बात सोचता ।

धक्कू अपने अपराध के लिये दंड पाकर और प्रायश्चित करके चुप रह गया और मेरे लिये परेशानी का कारण छोड़ गया ।

मन की पुकार

गाड़ी सिपपुर स्टेशन पर पौ फटते-फटते पहुंच गयी थी।

ब्रह्मपुत्रा का जल स्टेशन की लाइनों तक बढ़ आया था। पाँडू जाने वाला जहाज घाट से कुछ परे ही पानी में खड़ा था।

सुना कि नदी में बाढ़ आ जाने के कारण दूसरी ओर जहाज का घाट पानी में डूब गया है। पानी कुछ उतर जाने पर ही जहाज छूट सकता था।

दिन का दूसरा पहर लग गया पर जहाज के चलने का कोई संकेत नहीं मिला। पार जाने के लिये व्याकुल भीड़ अपनी गठड़ी-मुठड़ी लिये, असहाय टीनों के छप्पर के नीचे बैठी थी। पाँच-सात आसामी प्लांटर साहब और मेमें स्टेशन के बरामदे में कुर्सियों पर बैठे जम्हाइयाँ ले रहे थे। इंटर क्लास में सफर करने वाले हम चार-पाँच आदमी भी भीड़ से हटकर छप्पर के नीचे बेंचों पर बैठे थे।

लम्बा सफेद कोट, सिर पर किश्तीनुमा काली टोपी पहने एक सेठ जी जहाज के इस विलम्ब से बहुत व्याकुल हो रहे थे। वे क्षण बेंच पर बैठते, क्षण में नदी की ओर जाकर देख आते और फिर जल्दी-जल्दी टहलने लगते। सेठ जी की सेठानी एक बक्स पर बैठी चुनरी के लम्बे घूंघट में मुख छिपाये थीं।

मझले कद के जरा भारी शरीर, गेहुआ रंग के एक अधेड़ व्यापारी भी डिब्रूगढ़ जा रहे थे और सेठ जी की व्याकुलता की ओर देख रहे थे। आखिर उन्होंने पूछ ही लिया—"सेठ जी, इतने परेशान क्यों हैं; जहाँ इतने लोग वहाँ हम और आप!"

सेठजी ने पहले छ टाला और फिर फट पड़े—"आज पूर्णिमा है। हमारे आज 'कामाक्षा' न पहुंचने से अंधेर हो जायगा। देवी के यहाँ मनौती के लिये, आये हैं.........।"

भारी शरीर अधेड़ भद्रपुरुष अपने कोट के बटन बंद कर मुस्कान मिले सहानुभूति के ढंग से कहने लगे—"सेठ जी, माता तो भावना से संतुष्ट होती है। वह तो विश्वास की बात है। उनके वरदान से आसनसोल में आपकी कामना पूर्ण हो सकती है तो आसनसोल में ही उनकी पूजा कर मनौती मान लेने से भी वे संतुष्ट होतीं।"

आपका क्या विचार है प्रोफेसर साहब ?" भद्रपुरुष ने मेरी ओर देखा, "हम कहते हैं, यह तो विश्वास का बल है।"

हमने सज्जन के विचार का समर्थन किया।

"देखिये सेठजी, आप मारवाड़ी हैं। हम भी जोधपुर रियासत के ही रहने वाले हैं। आपने 'जय माता' की महिमा सुनी होगी। बहुत जागृत देवी हैं, और बुंदासिंह डाकू का नाम भी सुना होगा, जिसकी गिरफ्तारी के लिये हजारों रुपये के इनाम की घोषणा थी। राजस्थान में कौन उसका नाम नहीं जानता ?" अधेड़ भद्र पुरुष ने सेठ जी की ओर घूम कर अपनी खिचड़ी मूछों को सहलाते हुये पूछा।

"हाँ, हाँ" सेठ जी ने स्वीकार किया, "शुना क्यों नहीं, सब शुना है।"

भद्रपुरुष हम दोनों को सम्बोधन करके सुनाने लगे। लिखने योग्य भाषा में उसे यों कहेंगे—

"हमारे यहाँ मेवाड़-मारवाड़ में 'जय माता' बहुत जागृत देवी हैं। जैसे कामाक्षा का मंदिर शिखर पर है, वैसे ही जय माता का मंदिर है। शिखर पर खड़े होकर जहाँ तक दृष्टि जा सकती है, अरावली पर्वतमाला की विस्तृत श्रेणियों में जय माता के शिखर से ऊंचा कोई शिखर नहीं है। देवी अपने इस आसन से दृष्टि की सीमा से भी बहुत दूर तक, अपनी चर-अचर संतान पर कृपा की दृष्टि रखती हैं। देवी की कृपा-दृष्टि की सीमा चरम चक्षुओं की भाँति सीमित नहीं। सौ या सहस्र कोस और उससे भी दूर, जहाँ भी मनुष्यों के हृदयों में देवी के प्रति भक्ति समाई हुई है, देवी का वरदान उनकी मनोकामना पूर्ण करता है और उनकी रक्षा करता है।

"प्रति वर्ष वैशाख-पूर्णिमा के समय सहस्रों भक्तों की भीड़ चित्तौड़-उदयपुर लाइन के सरोला स्टेशन से मंदिर तक फैल जाती है। साधारणतः उजाड़ दिखाई देने वाला नौ मील का यह पथरीला ऊसर पठार मेले से ठसाठस र जाता है। डेढ़-दो सौ भक्त तो प्रति पूर्णिमा आ जाते हैं। उस भीड़ से

व्यवसायिक लाभ उठाने के लिये अनेक छोटे-मोटे दूकानदार भी आ जुटते हैं। स्टेशन से लगभग एक फलांग तक और पहाड़ी पर मन्दिर के लिये आरम्भ होने वाली सीढ़ियों के समीप भी प्रायः बीस-तीस स्थाई दुकानें बन गई हैं। शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमाओं पर ही इतनी बिक्री हो जाती है कि दुकानदारों को शेष मास भर प्रायः ठाले बैठे रहना भी गवारा हो जाता है। कभी पूर्णिमा के अतिरिक्त भी रेल में सरोला स्टेशन से गुजरते हुये भक्त अवसर से देवी के दर्शनों के पुण्य का लाभ पा सकने के लिये अपनी यात्रा में व्यवधान डाल कर एक रात के लिये रुक जाते हैं। इस प्रकार शेष दिनों में भी दो-चार लोग, जब-तब आते ही रहते हैं।

"जय माता के मंदिर में गुप्तदान की और कामना गुप्त रखने की परम्परा है। दानी भक्त प्रायः ही अपना नाम-धाम गुप्त रख कर दान अथवा भेंट का धन मिट्टी के कुल्हड़ या हंडिया में मूंद कर देवी के मंदिर में रख जाते हैं। सरोला स्टेशन से माता के मंदिर की ओर जाने वाले भक्त, अथवा भक्त परिवारों में से कोई एक व्यक्ति प्रायः मिट्टी की छोटी सी हांडी या कुल्हड़ हाथ में लिये रहता है। मिट्टी के इन छोटे बर्तनों में भक्त की श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार पांच पाई के प्रसाद से लेकर पांच सौ, पांच हजार तक की भेंट भी हो सकती है। माता के लिये सोने का स्वर्ण-छत्र तक हो सकता है। यह माता का प्रताप है कि मंदिर के मार्ग में या मंदिर के चारों ओर नौ कोस की परिधि में कभी चोरी-चकारी या डकैती नहीं हुई। यों रियासत जयपुर ही क्या बीकानेर और जयपुर और अजमेर तक डाकू बुन्दासिंह का आतंक छाया हुआ था। अफवाह थी कि उसके दल में डेढ़-दो सौ डाकू थे जिन्हें वह बांट-बांट कर अपनी अलग-अलग छावनियों में रखता था परन्तु माता के मंदिर की नौ कोस की परिधि में असहाय बुढ़िया या बम्बई-कलकत्ता के करोड़पति सेठ, कोई भी अपनी लक्ष्मी उछालते निश्शंक आ-जा सकते हैं।

"ध्यान देने से सरोला स्टेशन पर और उसके बाहर दुकानों की दीवारों पर बहुत से इश्तहार चिपकाये हुये दिखाई पड़ते थे। इन इश्तहारों के बीचों-बीच दिया गया चित्र बहुत अस्पष्ट और धुंधला था। इश्तहार डाकू बुन्दासिंह की गिरफ्तारी के लिये इनाम की घोषणा के थे। यह इश्तहार कई वर्ष तक लगते रहे। इन इश्तहारों में हुलिया ठिकाना के खेमसिंह के लड़के बुन्दासिंह की गिरफ्तारी करा सकने वाले व्यक्ति को सरकारी इनाम दिये जाने की

घोषणा थी। इश्तहार में बुन्दासिंह का हुलिया भी था:—दुबला-पतला छरहरा शरीर, कद मध्यम, रंग गेहुंआ, आयु पैंतीस के लगभग। पहले यह इनाम दो हजार रुपया था, फिर पांच हजार हुआ और तब दस हजार रुपया कर दिया गया। बुन्दासिंह कभी गिरफ्तार नहीं हो सका परन्तु माता के प्रताप से भक्त उसके आतंक से मुक्त हो चुके हैं।

"जैसे जय माता की कृपा के चमत्कारों के विषय में अनेक दंत-कथायें प्रसिद्ध हैं वैसे ही बुन्दासिंह डाकू की क्रूरता, दया और माता के प्रति उसकी भक्ति की कथायें भी प्रसिद्ध हैं। बुन्दासिंह ने उदयपुर में दिन-दहाड़े भरे बाजार मुंदरिया सेठों की आढ़त की कोठी पर डाका डाला था। छः कत्ल कर सवा-लाख रुपया लूट ले गया था। उसके दल ने जोधपुर रियासत के भखरा के ठिकानेदार की गढ़ी में बीस बन्दूकचियों का सामना कर के गढ़ी को लूट लिया था। उसके चलती ट्रेनों में से लोगों को लूट लेने की कहानियां भी प्रसिद्ध थीं। बड़ा कलेजा था उसका। सेठों को नोटिस भेज देता था; अमुक दिन, अमुक स्थान पर पचास हजार रुपया रखवा दो। अगर धोखा देने का यत्न किया तो दूना वसूल किया जायगा और कत्ल की सजा दी जायगी। सेठ लोग डकैती के डर से पुलिस की गारदों का पहरा लगवा लेते। पर बुन्दासिंह मैजिस्ट्रेट या पुलिस के कप्तान का रूप धर कर डकैती कर लेता। एक नम्बर ऐय्यार था। ऐसे निश्शंक फिरता था, जैसे वन में सिंह।

"कहानी प्रसिद्ध थी कि घुमेट के एक बनिये भोला ने बुन्दासिंह को पहचान कर उस के मारवाड़ स्टेशन के समीप धर्मशाला में होने की खबर पुलिस को दे दी। पुलिस ने धर्मशाला को घेर लिया पर बुन्दासिंह अपने दल सहित भाग गया। सात दिन बाद उसने भोला के मकान पर धावा बोल कर उसे अपने ही मकान के सामने पेड़ से लटका कर उसके हाथ-पांव काट दिये। भोला खून बह-बह कर मर गया। ऐसे ही उसने अपने विषय में पता देने वाले एक आदमी को गोली मार कर सड़क किनारे पेड़ से लटका दिया था और एक मुखबिर पर मिट्टी का तेल डाल कर उसे उदयपुर स्टेशन के सामने जला दिया था।

"बुन्दासिंह की दयालुता की भी कई कहानियां प्रसिद्ध थीं। वह कन्या विवाह के लिये चिंतित बूढ़े निर्धनों के घर में हजार-हजार की थैली फिंकवा था। एक जवान कुली के गाड़ी के नीचे आकर मर जाने पर उसकी

बुढ़िया विधवा माँ असहाय हो गयी थी। बुन्दासिंह ने उसके घर में हजार रुपये की थैली फिकवा दी थी। जय माता के मेलों में ऐसी कई घटनायें हो चुकी थीं कि मंदिर से स्टेशन पर लौट कर किसी बुढ़िया ने अपनी गठड़ी में सौ रुपये का नोट खोंसा हुआ पाया तो किसी वृद्ध निर्धन ब्राह्मण ने अपनी लुटिया में पचास रुपये पाये। लोग कहने लगे थे, बुन्दासिंह देवी का परम भक्त है। वह देवी का रक्षित है, देवी का दूत है। चाहे जो हो, वह प्रति पूर्णिमा देवी को प्रणाम करने आता है। देवी की कृपा से उसे सूक्ष्म शरीर धारण करने की सिद्धि प्राप्त है। कभी वह पक्षी का रूप धारण कर लेता है कभी किसी पशु का। उस के शत्रु उसे देख नहीं पाते।

"कई बार जय माता के मेले के अवसर पर पुलिस कप्तान ने पांच सौ-हजार हथियार बंद जवान लेकर मेले को घेर लिया। बुन्दासिंह घिर भी गया तो कबूतर या कौए का रूप धारण कर आकाश मार्ग से उड़ता हुआ मंदिर में पहुंचा और माता के चरणों में नमस्कार कर लौट गया।

"सरौला स्टेशन से माता का मंदिर नौ मील है। स्टेशन से मंदिर तक सड़क धीमे-धीमे पठार पर चढ़ती जाती है। पहाड़ी की नीव से मंदिर तक भक्तों ने सीढ़ियाँ बनवा दी हैं। इन सीढ़ियों की संख्या तीन सौ तेंतीस है। अनेक भक्त सरौला स्टेशन से मंदिर तक नौ मील का पूरा मार्ग ही दण्डवत करते हुये अर्थात मार्ग को अपने शरीर की लम्बाई से नापते हुये मंदिर तक पहुंचते हैं और फिर प्रत्येक सीढ़ी पर दंडवत करते हुये मंदिर तक पहुंचते हैं। देवी को प्रसन्न करने के लिये ऐसी विराट साधना करने वालों के सगे सम्बन्धी सहायता के लिये लोटे में जल और हाथ में पंखा लिये साथ-साथ चलते हैं। यह साधना पूर्ण करने में कभी लोगों को पूरा एक पक्ष स्टेशन से मंदिर की ड्योढ़ी तक पहुंचने में लग जाता है। ऐसे तो अनेक हैं जो प्रत्येक सीढ़ी पर माथा टेक कर देवी को नमस्कार करते हुये तीन सौ तेंतीस सीढ़ियाँ पूरी करते हैं। देवी की कठिन भक्ति करने के पश्चात भक्त स्त्री-पुरुष देवी के सन्मुख कभी संतान के लिये, कभी व्यापार में सफलता के लिये, कभी बेटी के वर के लिये और अनेक बार अदालत में मुकद्दमा जीतने के लिये वरदान की भिक्षा मांगते हैं।

"कहते हैं, एक बार बुन्दासिंह गरीब बनिये का रूप धारण कर देवी का दर्शन करने के लिये आया था। तीन सौ तेंतीस सीढ़ी उतर कर अंतिम सीढ़ी

पर माथा रख कर प्रणाम कर रहा था कि उसकी दृष्टि सीढ़ी पर चढ़ना आरम्भ करती एक बुढ़िया पर गयी।

"बुढ़िया आयु से कुबड़ी हो गई थी। वह बहुत कठिनता से दोनों हाथों का सहारा लेकर पांच सीढ़ियां चढ़ कर हांफ गयी और सीढ़ी के साथ की चट्टान से पीठ टिका कर सांस लेने लगी।

"वृन्दासिंह का मन बुढ़िया की भक्ति और उसकी निर्बलता से द्रवित हो गया। डाकू था तो क्या, स्वभाव का तो दयालु था। बुढ़िया के समीप जा कर बोला—"मां तुम मानो तो हम पीठ पर लेकर तुम्हें माता की ड्योढ़ी तक पहुंचा दें।"

"वृन्दासिंह ने बुढ़िय को पीठ पर लेकर कंधे पर पड़ी चादर से बांध लिया और फिर मंदिर की ओर चढ़ चला।

"वृन्दासिंह की पीठ पर चढ़ी बुढ़िया उस पर माता की कृपा होने का आशीर्वाद देती हुई सुनाती जा रही थी कि वह छः बरस से प्रति वर्ष वैसाख की पूनो और कार्तिक की पूनो मंदिर में मनौती करने आती है। पिछली बार वैसाख में आई थी तो नौ दिन-रात और एक दिन में चढ़ पाई थी। बुढ़िया ने दुखित होकर कहा—"अब तो देवी माता समेट लें तो कृपा हो। अब तो शरीर चलने-फिरने लायक भी नहीं रहा। जाने माता कब सुनेगी।"

"वृन्दासिंह ने बीच में दो बार पांच-पांच मिनट सांस लेकर बुढ़िया को मंदिर तक पहुँचा दिया। वह स्वयं माता की ड्योढ़ी के बाहर बैठा रहा कि बुढ़िया मनौती करले तो वह नीचे जाते समय उसे पीठ पर लेता जाये।

"बाहर बैठे वृन्दासिंह को बुढ़िया का रुंधा-सा रोने का स्वर सुनाई दे रहा था। बुढ़िया पृथ्वी पर माथा टेके, मुख को फर्श के समीप किये गुहार कर रही थी—"जय माता, मेरे बेटे की हत्या करने वाले राक्षस वृन्दासिंह पर तेरा कोप फूटे। उसका सर्वनाश हो। उसके कुल में कोई न रहे। वृन्दासिंह ने जैसे मेरे बेटे को पेड़ से लटकाकर हाथ-पांव काट कर, खून बहाकर मार डाला वैसे ही उस के अंग कटें, उसका रकत बहे, वैसे ही वह रो-रो कर मरे। जय माता, मैं अपनी आंखों उसे खून बह कर मरता देखूं........।"

"वृन्दासिंह के शरीर का रोम-रोम कांप उठा। जिस देवी की रक्षा और [illegible] से वह अजेय बना है, उसी देवी के दरबार में उसकी मृत्यु के लिये [illegible]! परन्तु वह अपने को संभाल कर बैठा रहा।

"बुढ़िया बहुत देर तक माता के चरणों में लोट-लोट कर अपने बेटे पर हुये अत्याचार के प्रतिकार के लिये बुन्दासिंह के सर्वनाश के लिये माता को पुकारती रही।

"बुढ़िया मंदिर से निकली तो बुन्दासिंह ने फिर उसे 'माँ' संबोधन कर पीठ पर चढ़ाकर नीचे पहुंचा देने का प्रस्ताव किया।

बुढ़िया को पीठ पर लिये चार-पाँच सीढ़ी उतरते-उतरते बुन्दासिंह के मन में विचार आया—यदि वह बुढ़िया को नीचे गिरा दे तो सीढ़ियों के पहले मोड़ तक एक सौ तैंतीस सीढ़ियों से खट-खट नीचे गिरने में ही वह समाप्त हो जाये और देवी के दरबार में उसके सर्वनाश की दुहाई देने वाली न रहे। देवी के कोप से बड़ा भय बुन्दासिंह के लिये और क्या हो सकता था? परन्तु बुढ़िया तो छः बरस से देवी के सम्मुख प्रार्थना करती आ रही थी। वह अपने को सभाल रहा और सोचता रहा—वह दस बरस से देवी के दरबार में रक्षा की मनौती मान कर देवी की कृपा के बल पर अजेय और अक्षय बना रहा है। उसकी पीठ पर बैठी बुढ़िया छ. बरस से देवी के दरबार में उसके सर्वनाश की मनौती कर रही है। देवी क्या बुढ़िया की नहीं सुनेगी? देवी किस-किस का कैसे सुनगी? बासों मुकद्दमों में दानों पक्ष के लोग देवी की कृपा के लिये मनौती कर जाते हैं। इससे पहले बुन्दासिंह का एसा विचार नहीं आया था।

"कहते हैं उसके बाद बुन्दासिंह जय माता के मंदिर में नहीं गया। महीनों-बरसों बुन्दासिंह का कोई उत्पात नहीं सुनाई दिया तो पुलिस को विश्वास हो गया कि बुन्दासिंह किसी अवसर पर लगे किसी घाव से या किसी रोग से मर गया है।

"कुछ भक्तों का एसा भी विश्वास है कि देवी ने उसे सन्यासी हो जाने की आज्ञा दे दी।"

"प्रोफेसर साहब! हम तो कहेंगे यह सब विश्वास की ही महिमा है। बुन्दासिंह से कोई पूछता तो क्या जवाब देता? कहिये! अधेड़ व्यक्ति ने अपनी मूंछ पर हाथ फेर कर मेरी ओर देखा, "आप क्या कहते हैं?"

जब तक सेठजी समीप खड़े रहे मैं चुपचाप सज्जन का चेहरा देखकर बुन्दासिंह का हुलिया याद करता रहा। सेठजी सेठानी से कुछ बात करने के लिये उसके समीप गये तो हमने सज्जन के बहुत समीप हो, दबे स्वर में कहा—"ठीक कहते हो ठाकुर साहब, मन की पुकार देवी के भय और भरोसे से प्रबल होती है।"

देखा-सुना आदमी

तारा का विवाह माता-पिता के चुनाव और स्वयं उसकी अनुमति से हुआ था; ठीक उसी प्रकार जैसे कि आधुनिक युग में, हमारे समाज में उचित समझा जाता है।

माता-पिता ने लड़की के लिये उचित वर की प्रतीक्षा में तारा को एम॰ ए॰ तक पढ़ा दिया था। उसे घर में बेकार न बैठाये रखने के लिये पी॰ एच॰ डी॰ की तैयारी के लिये भी उत्साहित किया था। एक दिन तारा के पिता ने 'नारदर्न स्टार' पत्र के वैवाहिक कालम में एक विज्ञापन पढ़ा—एक प्रसिद्ध यूरोपियन फर्म के प्रबन्ध विभाग में काम करने वाले गौर, स्वस्थ, उच्च-शिक्षित उच्च वर्ण युवक के लिये सुशिक्षित और सुसंस्कृत वधू की आवश्यकता है। युवक का मासिक वेतन ७५०)। आयु अगले जन्म दिवस पर तीस वर्ष, कद औसत ऊंचा है।

तारा के भाई ने पत्र के कार्यालय द्वारा पत्र व्यवहार किया। युवक का ठीक पता जान लेने पर उन्होंने अपने दिल्ली स्थित मित्रों को लिख कर तथ्यों की तसदीक कर ली। इस के बाद फ़ोटो की अदला-बदली हुई। इतना सब संतोषजनक समझा जाने पर कृष्णदयाल दशहरे के अवसर पर लखनऊ में आकर तीन दिन एक यूरोपियन होटल में ठहरा। उसने तारा के घर खाना खाया, दूसरी बार चाय पी। तारा, उसके भाई, बहिन और कृष्णदयाल साथ-साथ लखनऊ के दर्शनीय स्थानों में घूमे।

तारा को दयाल का रूप और स्वभाव भी बहुत अच्छा लगा। इतना मधुर और कोमल कि बच्चों तक का मन रखते थे। छः मास बाद दोनों का [illegible] हो गया। तारा मायके की विदाई से उदास परन्तु मन में अरमानों के लिये दिल्ली चली गई।

कृष्णदयाल ने कमला मार्कट के सामने एक अच्छा, आधुनिक फ्लैट किराये पर ले लिया था। आवश्यक फ़र्नीचर भी था। नये घर में आकर तारा के लिये केवल एक ही काम था, घर को ढंग से सजाना। सजावट के मामले में कृष्णदयाल से कई बार मतभेद भी हो जाता। तारा अपनी ही राय पर डटी रहती। कृष्णदयाल कुछ झुंझला जाते और फिर पसन्द न आने पर भी तारा की बात मान लेते।

तारा कर तो अपने ही मन की रही थी परन्तु अपने ही मन की करते रहने में असन्तोष की एक सूक्ष्म सी किरक मन में रह जाती। चाहती थी, यह कह दें जैसे मैं कहता हूँ, वैसे करो तो मैं वैसे ही करूं परन्तु वैसी अवस्था कभी न आ पाती, सब कुछ तारा की ही इच्छा के अनुसार हो जाता। तारा को झुकने की आवश्यकता या पति की शक्ति अनुभव करने का संतोष न हो पाता। यह न हो सकने पर वह पति के स्वभाव की कोमलता पर मुग्ध हो जाती।

तारा को दिल्ली में आये दो ही मास बीते थे। शनिवार की सन्ध्या कृष्णदयाल और तारा नई दिल्ली में एक मित्र के यहाँ से तांगे पर लौट रहे थे। रिफ़्यूजी मार्कट में एक नई खुली दुकान पर तारा को एक ड्रेसिंग-टेबिल दिखाई दे गई। तारा को पूरे, बड़े आइने के सामने खड़ी होकर साड़ी पहनने का बहुत शौक था। नये सुन्दर घर में इस न्यूनता से वह मन मारे थी। पति की बांह थाम कर उसने कहा—"हाय, बड़ी सुन्दर टेबिल है। ज़रा देखें तो!"

ड्रेसिंग-टेबिल बिलकुल नये ढंग की, वास्तव में सुन्दर थी। रिफ़्यूजी दुकानदार ने दाम बताया—डेढ़ सौ रुपया।

कृष्णदयाल का मन न था। उसने तारा को अंग्रेजी में समझाया, यह दाम बहुत अधिक है। जल्दी क्या है, फिर सही।

कृष्णदयाल ने दुकानदार से पीछा छुड़ाने के लिये कह दिया—"ऐसी टेबिल सौ रुपये में कहीं भी मिल सकती है।"

दुकानदार ने टेबिल की बनावट, बेलजियम के असली आईने और लकड़ी की कई विशेषताएं बताईं।

कृष्णदयाल अड़ गया—"नहीं सौ से एक पैसा अधिक नहीं।"

रिफ़्यूजी दुकानदार दस छोड़ देने को तैयार हुआ, फिर बीस। ग्राहक को किसी तरह न मानते देख कर वह सौ रुपये पर ही आ गया।

दयाल फंस गया था। उसने मुसीबत टालने के लिये कहा—"अभी रुपया लेकर नहीं आये हैं। टेबिल देख ली है। आकर ले जायंगे।"

दुकानदार की आंखों में तिरस्कार का ऐसा भाव आ गया कि तारा से सहते न बना। उसने तुरन्त बटुआ खोल कर दस का नोट निकाल कर बढ़ा दिया और घर का पता बता कर बोली—"पहुँचा दो, बाकी वहां ले लेना।"

कनाटप्लेस से कमला मार्केट की ओर जाते हुये कृष्णदयाल ने खिन्नता प्रकट की—"तुम तो हर बात पर अड़ जाती हो। ऐसी क्या जल्दी थी? अभी तेईस सौ खर्च कर चुके हैं। तुमसे कहा था कि प्रोमोशन का झगड़ा तय हो जाये तो ले लेंगे।"

तारा ने स्वीकार किया—"क्या बताऊं, इस समय तो फंस ही गये।"

दयाल बोला—"मैं तो टाल रहा था। तुमने नोट उसे दे दिया। टेबिल वह सौ का भी नहीं है। जानें कैसी लकड़ी है। यह लोग तो रोगन पोतपात कर सब चीजों को सागौन की ही बना देते हैं।"

तारा ने कुंठित होकर क्षमा-सी मांगी—"डार्लिंग, सेल्फ़ रिस्पेक्ट की बात आ गई थी, क्या करती?"

दयाल ने शांति से समझाया—"इसमें सेल्फ रेस्पेक्ट की क्या बात थी? यह तो सौदा है। हमें नहीं जंचता। तभी तो मैं टाल रहा था।"

तारा ने स्वीकार किया—"अच्छा जाने दो। दस गये तो क्या हुआ। कल रविवार है। परसों सुबह उधर जाओगे तो उससे कह देना, हमें दूसरी जगह उससे अच्छी मेज मिल गई है। दस उसे रख लेने दो।"

रविवार के दिन कृष्णदयाल को दफ्तर नहीं जाना था इसलिये सब काम धीमे-धीमे चल रहा था। दस बजे का समय होगा, वे अभी नाश्ता ही कर रहे थे कि दरवाज़े की घंटी बजी।

नौकर ने आकर बताया—"कोई आदमी ड्रेसिंग-टेबिल लेकर आया है।"

"यह तो अच्छी परेशानी हुई। अब क्या होगा?" दयाल ने चाय का प्याला मेज पर रखते हुये घबराहट प्रकट की।

"उस से वही कह देंगे। बहुत होगा, ठेले का किराया दो रुपये और ले लेगा।" तारा ने समाधान किया परन्तु पति के चेहरे पर से परेशानी न दूर ~। दयाल कुछ हिचकचाता हुआ दरवाज़े की ओर चला।

दयाल ने बाहर आकर रिफ्यूजी दुकानदार को समझाया—"हमें इससे

अच्छी और सस्ती ड्रेसिंग टेबिल दूसरी जगह मिल गई है। वह दस रुपये तुम्हीं रखो।"

दुकानदार उबल पड़ा—"तुम्हारे मुह में जबान है या''''" उसने अपशब्द बक दिया।

तारा आंचल ठीक करके पति के संकट में सहायता के लिये आ रही थी। उसने भी दुकानदार की धृष्टता सुनी।

दयाल ने दुकानदार को क्रोध से डांटा—"क्या बकता है। निकल जा यहाँ से।"

रिफ्यूजी साधारण छोटे कद का, दुबला और मैला-कुचैला आदमी था परन्तु दयाल के सुन्दर फ्लैट और साफ़ कपड़ों से न दबकर उस से भी ऊंचे स्वर से गरज उठा—"बकता तू है ! क्या समझता है तू ? अभी पेट फाड़ कर सब बाबूपन निकाल दूंगा।"

तारा का रक्त खौल उठा। आगे बढ़ कर उसने डांटा—"तुम किसके हुक्म से ऊपर आया ? चलो नीचे।"

रिफ्यूजी आस्तीनें चढ़ाकर एक कदम आगे बढ़ा—"हम अपना पैसा लेने आया। हिम्मत है तो उतार दे नीचे।"

तारा भी क्रोध में कांप उठी—"तेरी हिम्मत है तो ले ले पैसा। हमें टेबिल नहीं चाहिये।"

रिफ्यूजी एक और कदम बढ़ा—"पैसा हम तुम्हारे बाप से ले लेगा, अभी लेगा।"

शोर सुन कर पड़ोसी फ्लैट के लोग भी निकल आये थे। तारा का मन चाह रहा था कि दयाल उस बदतमीज आदमी को चांटा मार कर गिरा दे, सीढ़ियों से नीचे ढकेल दे। जो होगा देखा जायगा। वह स्वयं ही क्यों न उसे धक्का दे दे। वह आगे बढ़ गई—"निकलो बाहर।" उसने कहा।

दयाल ने तारा को एक ओर करते हुए ऊँचे स्वर में पड़ोसियों को सुनाते हुए ललकारा—"तुमको पैसा लेना है, तुम पैसा लो। तुम लेडीज के सामने बदतमीजी क्यों करता है ?" दयाल क्रोध में पाँव पटकता हुआ रुपया लेने कमरे में चला गया।

तारा क्रोध और अपमान से बावली हो गई। वह दयाल के पीछे-पीछे भागी। अलमारी से रुपया निकालते हुए पति की बाँह पकड़ कर उसने कहा—

मैनेजर गरम जलवायु में स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण वापस जा रहा था। दयाल के मामा फर्म के बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स के मेम्बर थे। उन्हों ने विश्वास दिलाया था कि उसकी जगह दयाल का प्रोमोशन कराने का प्रयत्न करेंगे। सर्किल मैनेजर पिछले वर्ष एक मास के लिए अवकाश पर था तो दयाल ने उसकी जगह काम भी किया था।

नन्दन भी फर्म में सब मैनेजर था और दयाल से बहुत वर्ष पहले से फर्म में काम कर शनैः-शनैः उन्नति करता आया था। पिछले वर्ष सर्किल मैनेजर की जगह दयाल को दी जाने पर भी उसने हकतलफ़ी और अपमान का विरोध किया था। अब उसे सांप कर दयाल को यह जगह स्थायी रूप से दी जाने की अफ़वाह उड़ी तो नन्दन ने फर्म को नोटिस दे दिया कि उसके अधिकार की उपेक्षा कर उसका अपमान किया जाने पर उसके नोटिस को त्याग-पत्र मान लिया जाये।

दयाल को आशंका हुई कि नन्दन कहीं धौंस में ही पद न ले जाये। यह भी सुना था कि सर्किल मैनेजर और बोर्ड के यूरोपियन मेम्बर नन्दन के ही पक्ष में थे। अपना पलड़ा भारी करने के लिये दयाल ने भी नोटिस दे दिया। उसका दावा था कि वह उस पद पर अस्थायी रूप से काम कर भी चुका है।

झगड़ा बढ़ कर स्थिति यह हो गई थी कि नन्दन और दयाल में से एक को फर्म छोड़नी ही पड़ेगी।

दयाल इस झगड़े से बहुत चिन्तित रहता था। तारा से बात कर अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करता—"अब इज्ज़त का सवाल हो गया है, चाहे नौकरी जाये। मैं दफ्तर में क्या मुँह दिखाऊंगा। मेरे लिये बीसियों नौकरियां हैं। नन्दन तो इसी दफ्तर में सवासौ रुपये पर क्लर्क भरती हुआ था। सर्किल मैनेजर की खुशामदों से जूतियां रगड़-रगड़ कर पाँच वर्ष में सब-मैनेजर बन पाया है। अब यह दिमाग़ है। नौकरी छूट जाये तो सिरकी डाल कर मैदान में बैठना पड़ जाये बेटा को।"

दयाल कभी चिंतित हो कर दूसरी बात भी कहता—"वैसे साढ़े-सात सौ की नौकरी मामूली बात नहीं है। तुम जानती हो, सवासौ की वेकेंसी के इश्तहार के जवाब में पाँच हज़ार दरख्वास्तें आती हैं'''''''।"

तारा हौसला बंधाती—"क्या है, अब तो बात का सवाल है। जब बात यहाँ तक पहुंच गई है तो अब पीछे कैसे हट सकते हो। हम लोग ऐसे कौन

भूखे मरे जा रहे हैं । इज्जत के लिये तो आदमी सिर भी दे देता है ।"

बोर्ड की मीटिंग से दो दिन पहले दयाल दफ्तर से कुछ पहले ही आ गया और जबरदस्ती की मुस्कान चेहरे पर लाकर बोला—"बेटा नन्दन तो गये ।"

तारा ने सान्त्वना पाकर पूछा—"चीफ मैनेजर ने फैसला कर दिया ?"

दयाल ने उत्तर दिया—"नहीं, चीफ मैनेजर का पी० ए० खन्ना अपना मिलने वाला है । उसने सुबह जाते ही बताया था कि साहब ने फैसला किया है कि प्रोटेस्ट का नोटिस देने के कारण दोनों को डिसमिसल आर्डर दे दिया जाये ।" आज साहब बोर्ड को रिपोर्ट भेजने वाले थे । मैंने जाकर साहब से बात की—मेरे लिये फर्म का हित और निर्णय मुख्य है । मैं पद का भूखा नहीं हूँ । अगर फर्म मेरी अपील को प्रोटेस्ट समझती है तो मैं उसे वापस लेता हूँ । मैंने अपना प्रोटेस्ट वापस ले लिया । नन्दन बेटा प्रोटेस्ट पर डटे हैं । नौकरी से हाथ धोयेंगे । मेरे रास्ते की अड़चन खुद ही दूर हो जायेगी ।"

तारा का सिर झुक गया ।

दयाल कहता गया—"साढ़े-सात सौ की नौकरी मामूली चीज नहीं है । इज्जत तो आदमी की हैसियत से होती है । नन्दन अब नौकरी ढूंढ़ते फिरेंगे तो क्या इज्जत रह जायगी ? उसे दूसरी नौकरी कहां मिली जाती है ।"

तारा का मन मानो मर गया । न हंस सकी न बोल सकी ।

दयाल ने नौकर को चाय लाने के लिये कहा और कमरे को बांटे हुये पर्दे के पीछे कपड़े बदलने के लिये ड्रेसिंग टेबिल की ओर चला गया । पर्दे के पीछे से ही बोला—"तो आज तो प्रोमोशन की शर्त भी पूरी हो गई । कम से कम रास्ते की रुकावट तो दूर हुई । आज इस ड्रेसिंग टेबिल का उद्घाटन हो जाये ।"

तारा ने आंचल में मुंह लपेट लिया और सोफा पर लेट गई । दयाल कपड़े बदल कर आया तो वह गुम-सुम बैठी थी ।

"क्यों क्या बात है !" दयाल ने कपड़े बदल कर पूछा और उसकी दृष्टि बीच की गोल मेज पर पड़े नये आये पत्र की ओर चली गई । उसने पूछा—"क्या खबर है, लखनऊ से पत्र है ?"

"मैं लखनऊ जाऊंगी" तारा ने सिर झुकाये हुये उत्तर दिया ।

दयाल लिफाफे से पत्र निकाल कर पढ़ने लगा । पत्र में तारा के बड़े भाई की बीमारी की बात लिखी थी कि चार दिन से एक ही बुखार है । डाक्टरों

ने खून की परीक्षा कराने के लिये कहा है ।

दयाल ने सान्त्वना दी—"घबराने की तो कोई बात नहीं । खून की परीक्षा तो हो ही जानी चाहिये । चाहती हो तो हो आओ । कब जाना चाहती हो !"

"आज ही रात" तारा ने उत्तर दिया ।

दयाल ने फिर समझाया—"ऐसे घबराने की क्या बात है । कल-परसों चली जाना । कल तक दफ्तर का हाल भी मालूम हो जायगा ।

तारा नहीं मानी तो दयाल मान गया ।

तारा लखनऊ पहुंची तो बड़े भाई का ज्वर उतर भी चुका था परन्तु तारा बहुत दुखी, गुम-सुम बैठी रहती । पड़ोस की कोठी की सहेली विमला भी मिलने आई थी । उससे भी उसने विशेष बात न की ।

विमला ने विवाह के बाद की रहस्य की बातें पूछीं, हंसाने का बहुत यत्न किया परन्तु तारा गुम-सुम ही रही जैसे मन भर गया हो ।

भाभी दूर से यह देख रही थीं, समीप आ गईं । उनने भी विमला से तारा के यों गुम-सुम रहने की शिकायत की ।

भाभी भी बोलीं—"भई हमने तो इसी की इच्छा से सब कुछ किया था । आदमी दिखा दिया, बात भी करा दी । विवाह से पहले इससे अधिक और क्या देखा जा सकता था ?"

विमला ने आत्मीयता और समवेदना से पूछा—"तूने तो देख-सुन कर विवाह किया था, क्या बात है ?"

तारा मौन रही ।

विमला ने फिर तारा से आग्रह किया—"क्या सचमुच पसन्द नहीं ?"

"क्या पसन्द नहीं ?" तारा रूखे स्वर में बोली ।

विमला ने संकोच दूर हटाकर पूछा—"और क्या पसन्द होगा ? तेरे अपने आदमी के लिये पूछ रहे हैं ?

"आदमी ही तो नहीं" तारा ने उत्तर दे दिया ।

भाभी और विमला को सन्नाटा मार गया । कुछ देर मुंह लटकाये बैठी रहीं । फिर तारा को धैर्य के लिये समझाने लगीं ।

तारा फिर भी न बोली ।

कुछ देर बाद विमला बहुत दुखी होकर बिना कुछ और बात किये अपने घर चली गई ।

भाभी ने तारा को समझाया—"""बहिन, अपनी तरफ़ से तो सब देख-भाल लिया था, और क्या कर सकते थे। ऐसी बात है तो भी तू इतना दिल छोटा मत कर। आजकल तो सब तरह का इलाज हो जाता है। अपना पर्दा तो रखना चाहिये। विमला के सामने तो तुझे ऐसे नहीं कहना चाहिये था। वह एक नम्बर नगर नायन है। दुनिया भर में ढोंडी पीट देगी।"

तारा समझी और बहुत खिन्नता से बोली—"तो आदमी क्या बस वही कुछ होता है?"